अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-01, 16-31 अगस्त, 2016

सर्वोदय जगत का
40वाँ वर्ष

दलित अत्याचार के विरुद्ध गांधीजनों का
प्रायश्चित उपवास सत्याग्रह
गांधी आश्रम, अहमदाबाद

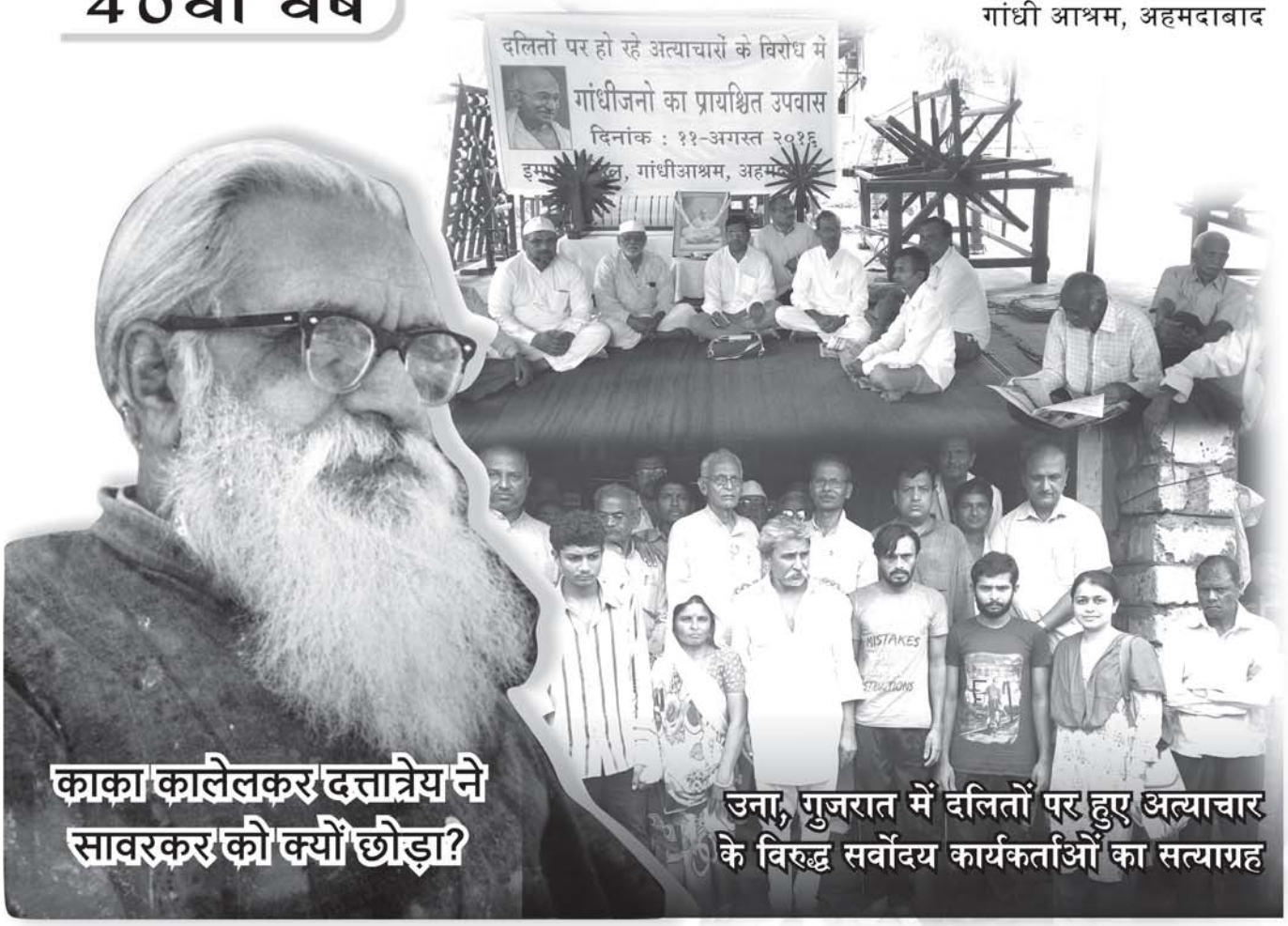

काका कालेलकर दत्तात्रेय ने सावरकर को क्यों छोड़ा?

उना, गुजरात में दलितों पर हुए अत्याचार के विरुद्ध सर्वोदय कार्यकर्ताओं का सत्याग्रह

"इस बहुवंशी, बहुधर्मी, बहुभाषिक भारत के पिछले तीन-चार हजार वर्षों के इतिहास का अगर कोई अर्थ है और भारत भाग्य विधाता ने इस राष्ट्र के हाथों साधना चलाकर अगर हमें किसी मिशन के लिए तैयार किया है तो वह धर्म-समन्वय के विशाल और गंभीर युग कार्य के लिए ही है। धर्म-समन्वय की गहरी और ठोस बुनियाद पर ही अब सारे काम करने होंगे।"

—काका कालेलकर

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 01, 16-31 अगस्त, 2016

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. सर्वोदय जगत : अहिंसक संघर्षों का... 02
2. क्रांतिकारी दत्तात्रेय (काका कालेलकर)... 03
3. मैत्री साधना : युग-धर्म... 05
4. सच्चाई ही आपको बदल देती है... 08
5. मनुष्य की बुद्धि में प्रश्न यह है कि... 09
6. साम्प्रदायिकता और शहीद भगत सिंह... 11
7. बांग्लादेश : तलवार से दाढ़ी बनाने का... 13
8. जाति-निर्मूलन का सवाल... 15
9. दलित अत्याचार के विरोध में... 17
10. सम्पूर्ण क्रांति मित्र-मिलन समारोह... 18
11. कविता : कन्यादान 20

संपादकीय

सर्वोदय जगत : अहिंसक संघर्षों का मुख-पत्र

सर्वोदय जगत अपनी 40 वर्षों की यात्रा में लोकशक्ति निर्माण के प्रयोगों का साक्षी भी रहा तथा उन विचारों का वाहक भी रहा है। प्रेम व करुणा की शक्ति का प्रकटीकरण भू-दान यज्ञ में हुआ तथा लोकशक्ति-लोकसत्ता का प्रकटीकरण ग्राम-स्वराज्य के प्रयोगों में हुआ। आजादी प्राप्ति के बाद यह बहुत बड़ा प्रयोग था। इस अभियान के प्रति राजसत्ता का सकारात्मक रुख था, तथा अधिकांश राजनीतिक दलों में भी इस प्रयोग के प्रति सम्मान का भाव था। ये सभी शक्तियां स्वतंत्रता आंदोलन के गर्भ से निकली थीं, इस कारण मोटे तौर पर ये सभी लोकशक्ति के निर्माण की पक्षधर थीं।

दूसरा दौर वह आया, जिसे राजनीतिक दलों के अंदर लोक संगठन निर्माण की अपेक्षा पार्टी संगठन का निर्माण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। जबकि सर्वोदय आंदोलन लोक संगठन के कार्य से जुड़ा रहा। अब राजनीतिक दलों के आंदोलन, जनता के मुद्दों के लिए तो होते थे, किन्तु उनका लक्ष्य पार्टी के संगठन को मजबूत करना होता था, जिसके माध्यम से वे सत्ता में जा सके। ये वह दौर था, जिसमें पार्टियां राजसत्ताभिमुख हो गयीं तथा सर्वोदय आंदोलन लोकसत्ताभिमुख बना रहा।

इस परिस्थिति के गर्भ से एक नयी स्थिति का निर्माण शुरू हुआ। राजसत्ता धीरे-धीरे जन-विरोधी होती गयी। विकास के नाम पर नौकरशाही तथा पूंजीशाही का गठजोड़ बनता गया। विकास के नाम पर जो प्रक्रियाएं चलने लगीं, उनमें जनता के भागीदारी की सम्भावना खत्म होने लगीं। इसके परिणामस्वरूप राजसत्ता एवं लोकसत्ता के बीच टकराव की स्थिति खड़ी होती चली गयी। लोक अपनी स्वायत्तता के जो प्रयोग ग्राम स्तर या लोक स्तर पर करते, उन्हें राष्ट्रीय स्तर की आंधी कमजोर कर देती या निष्प्रभावी बनाने लगी। ऐसे में लोकसत्ता के प्रकटीकरण के लिए जरूरी हो गया कि लोकशक्ति अपनी स्वायत्तता प्रकट करने के लिए जमीनी स्तर पर रचना का कार्य भी करे तथा राष्ट्रीय स्तर पर उस आंधी का भी विरोध करे जो जमीनी स्तर के काम को मिटाने का कारण बनती है।

संपूर्ण क्रांति आंदोलन का जन्म इन्हीं परिस्थितियों से हुआ था। जयप्रकाशजी के नेतृत्व ने इसमें गहरे अर्थ भर दिया। जनता सरकार के अवधारणा की व्याख्या करते हुए उन्होंने सूत्रवाक्य दिया 'जनता ही सरकार'।

सन् 1977 के बाद देश के कई बड़े आंदोलन, पार्टियों के दायरे से बाहर हुए। जिसने यह स्थापित किया कि लोक की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व ये लोक आंदोलन करेंगे। पार्टियां लोक की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने के संदर्भ में अप्रासंगिक होती चली गयीं। उनकी भूमिका अब महज चुनाव जिताने की मशीन जैसी हो गयी और पार्टियों के अंदर मूल्यों से अधिक *'चुनाव जिताने की क्षमता'* की प्रतिष्ठा होने लगी। पार्टियों में एक व्यक्ति का दबदबा, इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम थीं।

सन् 1990 के बाद राजनीतिक पार्टियां (मुखर रूप से या बिना मुखर हुए) पूंजी, वस्तुओं एवं सेवाओं के वैश्वीकरण की पक्षधर होती चली गयीं। जबकि वैश्वीकरण का यह संस्करण लोकशक्ति व लोकसत्ता निर्माण पर एक बड़ा हमला था। लोकशक्ति निर्माण के काम से जुड़े लोग इसके प्रतिरोध में प्राणपण से जुट गये। जब अंतर्राष्ट्रीय पूंजी ने यह देखा कि राजसत्ता एवं पार्टियां लोक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर पा रही हैं, तो उन्होंने 'सिविल सोसाइटी' के नाम पर ऐसी संस्थाओं को खड़ा करना शुरू किया, जो अंतर्राष्ट्रीय पूंजी द्वारा पोषित थीं। इन्होंने भी बहुत भ्रम खड़ा किया।

लेकिन अब राजसत्ता पूरी तौर पर वैश्विक पूंजी के साथ गठजोड़ कर, उसके मार्ग को अधिकाधिक सुगम बनाने के कार्य में जुट गयी। इसके लिए वैश्विक बाजार को निर्बाध बनाया जा रहा है तथा विश्व भर के प्राकृतिक स्रोतों, जैसे जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि को वैश्विक पूंजी के नियंत्रण में लाया जा रहा है। इन प्राकृतिक स्रोतों से जुड़े परम्परागत समुदाय शोषण, दोहन व विस्थापन के शिकार हो रहे हैं। सर्वोदय जगत इन सभी लड़ाइयों का मुख-पत्र बनने का प्रयास करता रहा है। बिमल कुमार

श्रद्धांजलि

21 अगस्त : काका कालेलकर पुण्यतिथि

क्रांतिकारी दत्तात्रेय (काका कालेलकर) ने सावरकर को क्यों त्यागा?

❑ अशोक मोती

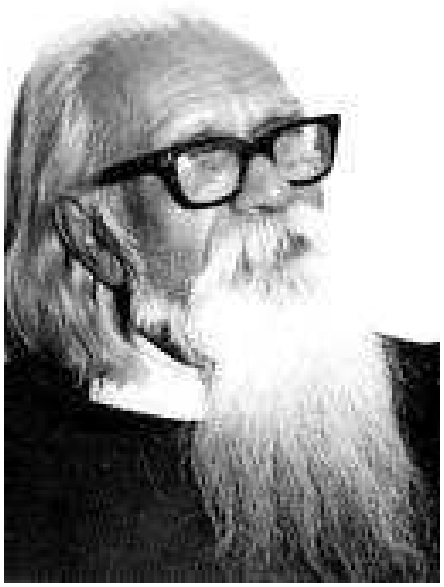

1905 में दत्तात्रेय ने अपने जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय ले लिया, जो सिर्फ निर्णय नहीं एक 'संकल्प' था—''मैं अपना कोई कैरियर नहीं बनाऊंगा। हो सकता है, मेरे अनजाने में कोई कैरियर मेरे आसपास अपना जाल बुन ले। पर, जब उसके बारे में मैं सचेत होऊंगा, वह जाल मैं अपने हाथ से तोड़ डालूंगा। सारा जीवन तरह-तरह के अनुसंधानों और प्रयोगों में ही बिताऊंगा।''

यह संकल्प दत्तात्रेय ने तब लिया जब वे अपने कॉलेज फर्ग्यूसन, पुणे में पढ़ते थे और पूरे देश के लिए मर मिटने की हवा चल रही थी।

लार्ड कर्जन ने एकाएक बंगाल प्रांत के विभाजन की घोषणा भी कर दी थी। केशरी में लोकमान्य तिलक के लेखों को पढ़कर पुणे के युवाओं का खून खौलने लगा था। बंग-भंग विरोधी आंदोलन पूरे देश में फैल चुका था। महाराष्ट्र में गुप्त षड्यंत्री दल वासुदेव बलवंत फड़के के जमाने से मौजूद थे। फर्ग्यूसन में विनायक दामोदर सावरकर और उनका भी दल कार्यरत होने लगा था। दत्तात्रेय का झुकाव भी इसी दल के प्रति था। सावरकर और दत्तात्रेय के विचारों में अदभुत साम्य था और दोनों ही तिलक के भक्त थे। बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन ने बंगाल के क्रांतिकारियों के संपर्क में आने का सुअवसर प्रदान किया और कुछ ही महीनों में विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष उनके भाई वारीन्द्र कुमार घोष, स्वामी विवेकानंद के भाई उपेन्द्र नाथ दत्त, अविनाश भट्टाचार्य आदि के नाम महाराष्ट्र के युवकों की जुबान पर चढ़ने लगे। *लाल, बाल, पाल* की त्रिमूर्ति का नाम पूरे देश में गूंजने लगा था। स्वदेशी, बहिष्कार और पिकेटिंग ये तीन आंदोलनकारियों के प्रमुख हथियार थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी स्वदेशी आंदोलन के एक नेता थे। उन्होंने अपनी कविताओं और लेखों द्वारा स्वदेशी आंदोलन सांस्कृतिक बुनियाद देने का प्रयत्न किया था और भगिनी निवेदिता ने तो इस सांस्कृतिक धार्मिक वृत्ति को जीवन-दृष्टि का सारभौम रूप दे दिया था। 1907 में लाला लाजपत राय, सरदार अजीत सिंह की गिरफ्तारी और बिना अपराध सिद्ध किये सजा सुनाने की खबर सुनकर दत्तात्रेय का खून खौलने लगा। फर्ग्यूसन के अपने साथियों से कहा—''अब क्रांति का काम हमें बिना विलम्ब शुरू कर देना चाहिए और जब तक अंग्रेजों की हुकूमत खत्म नहीं होती, यही काम करते रहना चाहिए।

उस दिन सावरकर से दत्तात्रेय की एक लम्बी चर्चा हुई। अपने निश्चय को दृढ़ करने के लिए उन्होंने छः साल तक चीनी नहीं खाने का व्रत ले लिया और उसे बाद तक सँभाला भी। दत्तात्रेय ने वाकायदा सावरकर दल जिसका नाम *'रामहरि'* था, की सदस्यता ग्रहण की और शपथ ली : ''मैं मातृभूमि की मुक्ति के लिए अपना जीवन अर्पित करता हूं। दल के नेताओं की ओर से जो भी आज्ञा होगी उसका पालन करूंगा और गुप्तता का भी पूरा पूरा पालन करूंगा।''

सावरकर से मतभेद क्यों?

दत्तात्रेय जो भी काम करते बड़ी गंभीरता से करते। दल द्वारा निशाना लगाने की तालीम में भी वे बड़े प्रवीण हो गये। दस में से नौ निशाना वे सही लगाने लगे।

किन्तु कुछ ही समय बाद दत्तात्रेय का भ्रम इस दल के विषय में दूर होते गये और वे निराश भी हुए। इसके कई कारण थे।

पहला तो यह दल गुप्तता के मायने में बहुत गंभीर नहीं था। दत्तात्रेय का आग्रह था कि दल में जो क्रांतिकारी हैं उनके संबंध में सरकार तो क्या अपने घर के लोगों को भी कुछ भी मालूम न हो। फिर दत्तात्रेय का क्षोभ इससे बढ़ा कि इस दल को अंग्रेजों की ताकत का कोई अंदाजा नहीं था। सावरकर पर इटली के मैजिनी का प्रभाव अधिक था। अंग्रेजी अफसरों की हत्या करना उनका प्रमुख कार्यक्रम था। यद्यपि दत्तात्रेय को इन हत्याओं से कोई तात्त्विक आपत्ति नहीं थी, किन्तु उनका मत था कि इससे तो अंग्रेज भागने से रहे। इस तरह की हिंसा को दत्तात्रेय एक सट्टेबाजी मानते थे।

दूसरा, 'रामहरि' दल में 1857 के स्वतंत्रता आंदोलन की बार-बार दुहाई दी

जाती थी किन्तु उनके पास अपनी हार के कारण का कोई उत्तर नहीं था। दत्तात्रेय ने गहन अध्ययन कर हार के कारणों को समझ लिया था, कि बावजूद इसके हमारी फौज लम्बी थी, हमारे नेता बहुत बहादुर थे, हमारी हार इसलिए हुई कि हमारा संगठन कमजोर था। दूरदृष्टि का नेताओं में अभाव था। हमारा नैतिक चरित्र भी ऊंचा नहीं था और सबसे प्रमुख बात इस समर में भारतीय जनता का पूरा समर्थन व सहयोग नहीं था। दत्तात्रेय इस प्रश्न का जवाब भी ढूंढ़ते थे कि 1857 में हिन्दू-मुसलमान एक थे। क्या आज वे एक हैं? अगर नहीं तो क्यों नही? क्या आज के राजाओं पर हम निर्भर रह सकते हैं? दूसरी ओर उनका कहना था कि अंग्रेजों का चिन्तन हमसे अधिक है और कार्रवाई भी। अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम को उसने अलग कर दिया है। राजाओं के चरित्र को उसने भ्रष्ट कर दिया है, और उसने अपनी सेना भी मजबूत कर ली है। इसलिए दत्तात्रेय मानते थे कि 1857 जैसा समर अब सम्भव नहीं है।

हिन्दू धर्म में क्रांति की गुंजाइश नहीं

'रामहरि' दल के नेताओं से दत्तात्रेय को कभी यह सुनने को मिला कि वे संन्यासियों की भी एक टोली बनायेंगे जो धर्म की बात लोगों तक ले जाकर उन्हें क्रांति की बात समझायेंगे। दत्तात्रेय को इसमें कोई अपत्ति नहीं थी, किन्तु वे धर्म को इन लोगों से अधिक समझा था। उनका कहना था कि जिस धर्म को लेकर हम लोगों के पास जायेंगे उस हिन्दू धर्म में क्रांति के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। यह धर्म दुनिया का सर्वाधिक कनफरमिस्ट धर्म है। परिस्थिति के साथ अनुरूप बनकर वह रहता आया है। किसी भी राज्यकर्ता की सेवा करने को सदा तत्पर रहता है। इस धर्म में जितनी परवरिस हुई है, उन्हें दबकर रहने की आदत पड़ गयी है। अस्तु यह धर्म राष्ट्रव्यापी उत्थान के लिए मददगार नहीं हो सकता। धर्म को लेकर यदि लोगों के पास जाना हो तो धर्म की एक नई आवृत्ति लेकर ही हमें जाना होगा।

दत्तात्रेय के पास क्रांति का एक ही कार्यक्रम था—गुरिल्ला पद्धति द्वारा छापामार युद्ध, पर सावरकर के पास इसकी कोई योजना नहीं थी। दत्तात्रेय समय से सजग हुआ और दल से अलग हो गया। अलग होने से पहले सावरकर से मिला। अपने सारे मतभेद उन्होंने सामने रख दिये और स्पष्ट कहा—''मुझे विश्वास नहीं कि आपका दल क्रांति का विशेष कार्य कर सकेगा। एक-दो हत्याएं करने में वह अवश्य सफल होगा पर, उसके बाद पूरा दल तितर-बितर हो जायेगा। जाज्वल्य देशाभिमान, आत्यंतिक त्याग और मरने-मारने की तैयारी, यह आपकी असली पूंजी है। यह बहुत बड़े सदगुण हैं, इसमें कोई मतभेद नहीं। इन सदगुणों के अभाव में कोई कार्य सफल नहीं हो सकता। पर क्रांति के लिए इतनी ही पूंजी पर्याप्त नहीं है। अंग्रेजों की तैयारी कितनी है, कैसी है, इसका हिसाब हमारे पास होना चाहिए। अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए उनके जितनी तैयारी हमारी भले न हो पर हमारी पद्धति की सफलता के लिए जो कौशल चाहिए, परस्पर सहयोग चाहिए उसका मैं यहां पूरा अभाव देखता हूं। इन कारणों से मैं आपके साथ काम नहीं कर सकता। मैं दल से अलग होना चाहता हूं। परंतु अलग होने से पहले आपको इतना वचन देता हूं कि मैंने दल में प्रवेश करते समय जो गुप्तता की शपथ ली थी, उसका पालन मैं जिन्दगी भर करूंगा। आपको कभी धोखा नहीं दूंगा, आपको नुकसान हो, आपके कार्य में बाधा पहुंचे, ऐसा कोई काम मैं नहीं करूंगा।

सावरकर ने बस इतना ही जवाब दिया—''मुझे बड़ा दुख है कि मैं आपको रोकना नहीं चाहता।''

दत्तात्रेय फिर एक नये क्रांतिकारी दल में शामिल हुए और 1912 तक उसमें महत्त्वपूर्ण संबंध और सम्पर्क बनाये रखा, जिसमें महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब और मद्रास के क्रांतिकारी शामिल थे। इस दल के संबंध में कभी किसी से पूछने पर उन्होंने कुछ नहीं बतलाया और सीधे कहा—जो गुप्त वचन दिया है उसका निर्वहन करना मेरा कर्तव्य है।

सावरकर से अलग होने के संदर्भ में दत्तात्रेय स्पष्ट कहते थे—''क्रांतिकारियों का जीवन संतों के ढंग की चीज भले ही न हो पर वीरों के ढंग की तेजस्विता और चारित्र्य-शुद्धि तो आवश्यक है ही। पर सावरकर के दल में यह आग्रह कत्तई न था।

दत्तात्रेय ने क्रांति के लिए अपना जीवन समर्पित किया था लेकिन वे जानते थे कि क्रांति के सिर्फ जयजयकार से क्रांति नहीं होती। क्रांति की पूर्व तैयारी के लिए रचनात्मक कार्य लेकर चलना आवश्यक है। वह इसकी खोज में था कि स्वामी विवेकानंद का एक अप्रकाशित निजी पत्र पढ़ने को मिला। स्वामीजी ने लिखा था—''देशोद्धार के संबंध में मैंने कई बार कई तरह से विचार करके देखा। हर बार मुझे एक ही उत्तर मिला, वह यही था कि शिक्षा ही उसका एकमात्र मार्ग है।'' दत्तात्रेय की सारी दुविधाएं यह पत्र पढ़ते ही दूर हो गयी। उसे लगा मानो स्वयं विवेकानंद उनसे कह रहे हैं—'बस यही एक काम हाथ में ले लो।'

दुनिया जानती है कि दत्तात्रेय जो बाद में काका साहब कालेलकर कहलाये, ने अपना पूरा जीवन शिक्षा, शिक्षण एवं प्रयोग में समर्पित कर दिया। काका एक यायावर थे, जिन्होंने हिमालय और विभिन्न तीर्थस्थलों और देश की परिक्रमा करते अन्ततः अपने को गांधी को समर्पित किया और उनके साथ रचनात्मक कार्यों में अपना जीवन लगाया। ऐसे क्रांतिकारी, देशभक्त, ऋषि और आधुनिक भारत के निर्माता काका कालेलकर को उनकी पुण्यतिथि पर शत-शत नमन् और श्रद्धांजलि। ❑

दस्तावेज : आध्यात्म

मैत्री-साधना : युग-धर्म

सर्वोदय की ओर प्रस्थान कैसे करें?

❑ काका कालेलकर

मैत्री-भावना में प्रेम है, वात्सल्य है, कल्याण-कामना है, भक्ति है। यह सब होने पर भी मैत्री-भावना में इस युग का जो सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध अथवा गुण होना चाहिए, वह भी है और वह है समानता। मैत्री-भावना में न तो कुछ बुजुर्गी का भाव है, न दास्यभाव। इसी भूमिका पर ही मैत्री-भावना उत्तम ढंग से खिलती है।

हमारे यहां जीवन-साधना की चार भावनाएं उत्तम मानी गयी हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। करुणा और मुदिता मैत्री-भावना के ही प्रासंगिक रूप हैं और उपेक्षा तो प्रतिकूल परिस्थिति की लाचारी से ही उत्पन्न हुई है।

बौद्ध परिभाषा में इन चारों आर्य-भावनाओं को 'ब्रह्म-विहार' कहा है। हम अपने ब्रह्मदेव के चार मुखों के साथ इनका संबंध देख सकते हैं।

इन चार भावनाओं को इसलिए आर्य-भावना कहा है कि इन चारों में किसी भी जगह हीनता, असावधानी या अनार्यवृत्ति नहीं है।

सबके साथ मैत्री तो होनी ही चाहिए। उसमें दुःखी लोगों के प्रति अथवा जो लोग विपन्न अवस्था में पहुंच गये हैं, उनके प्रति तुच्छता या तिरस्कार नहीं होना चाहिए, लेकिन स्नेहमयी करुणा ही होनी चाहिए। मैत्री पिघली कि उसने करुणा का रूप धारण किया ही समझो।

जो लोग हमसे अच्छी स्थिति में हैं, उनकी समृद्धि देखकर मन में ईर्ष्या, मत्सर या असूया लाने के बदले केवल प्रसन्नता और मुदिता धारण करना यह है मैत्री की प्रफुल्लित रूप।

अब जो लोग हमारी मैत्री अथवा करुणा भी नहीं चाहते, जिन्होंने हमारे साथ मनोमालिन्य का नाता रखा है, जिनके मन में हमारे लिए बिना कारण दुश्मनी है और जिनकी सेवा करने का मौका हमें नहीं मिलता, ऐसे लोगों के प्रति मानव-सहज तिरस्कार, कठोरता, वैमनस्य अथवा द्रोहभाव रखने के बदले यह कहकर कि 'ईश्वर उनका भला करे' उनको छोड़ देना, ऐसे लोगों को हमारा द्वेष करने का मौका न देना, यह है उपेक्षा। मैत्री-भावना को ठहरने के लिए ही जब प्रतिपक्षी जगह नहीं देता, तब मैत्री-भावना उपेक्षा का रूप धारण करने के उपरांत और क्या कर सकती है?

कभी-कभी ऐसी उपेक्षा असहयोग का रूप धारण करके एक शस्त्र के तौर पर काम दे सकती है, बशर्ते कि उसमें कोई अनार्य भाव न आने पाये।

मैत्री-भावना में प्रेम है, वात्सल्य है, कल्याण-कामना है, भक्ति है। यह सब होने पर भी मैत्री-भावना में इस युग का जो सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध अथवा गुण होना चाहिए, वह भी है और वह है समानता। मैत्री-भावना में न तो कुछ बुजुर्गी का भाव है, न दास्यभाव। इसी भूमिका पर ही मैत्री-भावना उत्तम ढंग से खिलती है।

मैत्री-भावना में समानता की बुनियाद पर औरों के सुख-दुःख के साथ सहानुभूति विकसित करने वाला आत्मौपम्यभाव रहता है। यह आत्मौपम्यभाव जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे हृदय विशाल होता जाता है। औरों की मनोवृत्ति समझने की हमारी शक्ति बढ़ती है। अनेक लोगों के, अनेक तरह के दृष्टिकोणों का एक साथ आकलन हो सकता है। उसी में से हमें समन्वय की बातें सूझने लगती हैं। इसके फलस्वरूप आत्मौपम्य का समभाव हमें आत्मैक्य तक ले जाता है।

यह विश्वात्मैक्य ही अपना अन्तिम ध्येय है। हमारे हृदय में जब सारा विश्व समा जाता है, तभी हम कह सकते हैं कि यह सचराचर सृष्टि एक मेरा छोटा-सा घोंसला है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ विश्वात्मैक्य में विलीन हो जाते हैं। विश्वात्मैक्य यही है उपनिषद् में वर्णित 'भूमा'। यही है बृहत्तम ब्रह्म यानी परब्रह्म।

मैत्री-साधना में बाकी की सब साधनाएं आ जाती हैं, समा जाती हैं। इसीलिए वैदिक ऋषि ने गाया कि हम सब सत्त्वों के प्रति मैत्री की नजर से देखेंगे और सब सत्त्व हमारे प्रति भी मैत्रीभाव रखें।

इस मैत्री का प्राथमिक रूप समझने के लिए अद्रोह शब्द इस्तेमाल किया जाता है। भूतमात्र में से, सब प्राणियों में से किसी का भी हमसे द्रोह न हो, यह होनी चाहिए हमारी प्राथमिक चिन्ता अथवा आतुरता। इसी को हम अहिंसा की साधना कहते हैं। हमारे हाथों किसी का नुकसान न हो, अपने मन में हम किसी का बुरा न चाहें, यह है अहिंसा। इस तरह की खबरदारी यह है अहिंसा की साधना।

हमारे हाथों क्या नहीं होना चाहिए, यह बताने के लिए अद्रोह शब्द का प्रयोग हुआ है। किसी का भला न हो ऐसी हीन इच्छा या ऐसी वृत्ति या प्रवृत्ति को द्रोह कहते हैं। ईर्ष्या जब प्रज्वलित हो उठती है, तब वह द्रोह का रूप लेती है।

हमारे जमाने में इस द्रोह का, असद्बुद्धि का तत्त्व इतने सूक्ष्म तौर पर फैला है कि वह अपने में किस रूप में घर कर बैठा है, यह मनुष्य आसानी से नहीं देख सकता। जहां थोड़ा-सा भी मतभेद पैदा हुआ, वहां भिन्न राय रखने वालों के प्रति प्रथम मन में परायापन जागता है। उसमें से द्वेष बढ़ने लगता है। आज जहां देखें, वहां मतभेद के

साथ तिरस्कार और द्वेष व्यक्त हुआ देखने में आता ही है। *प्रतिपक्षी को धीरजपूर्वक समझने का और समझाने का पुरुषार्थ कौन करे? जहां पुरुषार्थ कम है, वहां गुस्सा अधिक होता है। यह स्थिति सब जगह दिखायी देती है। फलतः एक-दूसरे के साथ सहकार करने की वृद्धि कम होती जाती है। सहकार्य कम और चर्चा अधिक। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने के कारण जीवन-सहयोग कम ही होता जाता है और समाज के टुकड़े होते चले जाते हैं। यह सब बताता है कि मैत्री का प्रचार और आचार प्रयत्नपूर्वक बढ़ाने के ये दिन हैं।*

जब गांधीजी ने प्रजा-द्रोह करने वाली विदेशी सत्ता के खिलाफ असहयोग का रास्ता बताया, तब उन्होंने भारपूर्वक कहा था कि असहयोग एक तेज दवा है, वह जलद वस्तु है। किसी के साथ हम सदा के लिए असहयोग नहीं कर सकेंगे। किसी के साथ यदि हम लम्बे समय तक असहयोग चलायेंगे तो वह शस्त्र प्रतिपक्षी को बाधक होगा, उससे कहीं अधिक हमें बाधक होगा। (अस्पृश्यता एक तरह का भद्दा असहयोग ही था। इससे हम लोगों ने हरिजनों का अपरम्पार नुकसान किया है। लेकिन इससे भी अधिक हमें और हिन्दू-समाज के मानस को जो भयंकर नुकसान हुआ है, उसका हिसाब करने की शक्ति भी हममें नहीं रही है। हमारी कायमी अस्पृश्यता ने हिन्दू-मानस का जितना विनाश किया है, उतना कोई दुश्मन भी नहीं कर सकता।)

अब जब कि स्वराज्य हो चुका है, तब हमें सारी दुनिया के साथ की अपनी सहयोग-शक्ति पूरी-पूरी बढ़ानी चाहिए। मतभेद होने पर भी जितना भी सहयोग हमसे हो सके, करने की हमारी तैयारी होनी चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि सहयोग ही हमारा प्रधान धर्म है। मतभेद होने पर भी एक दूसरे के प्रति आदर रखने से ही कर्तव्य का पालन किया जा सकता है।

हमारे देश में अनेक धर्म चलते हैं। हमने चलने दिये हैं।

हमने अपने समाज को अपार जाति-पाँतियों में बांट दिया है। फलस्वरूप हमारा सामाजिक जीवन छोटे-छोटे दायरों में बँट गया है। मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, आर्यसमाजी भी हमारे यहाँ अलग-अलग जातियों के जैसे ही हो गये हैं। हिन्दू जातियाां हिन्दू होने के कारण एक-दूसरे को अपनाती हैं। परस्पर सहयोग का आदर्श अमुक हद तक अमल में भी लाती हैं। अन्यधर्मी लोगों के साथ हमारा सामाजिक व्यवहार इतना भी नहीं है। अन्यधर्मी लोगों में जाति संगठन के सब गुण-दोष आ गये हैं और ये जातियाँ तो हमसे इतनी स्वतंत्र और अलग हो गयी हैं कि सारे देश की भावनात्मक एकता और राष्ट्रीयता मजबूत करने के प्रयत्न में उनसे बहुत कम मदद मिलती है।

जातियों के और धर्मों के अलग-अलग बाड़े बनाने से हम अपने विशाल राष्ट्रीय जीवन की समर्थ और समृद्ध एकता को अनुभव नहीं कर सकते। आज जो थोड़ी एकता दिखाई देती है, वह राजद्वारी एकता ही है। आर्थिक व्यवहार में जो थोड़ा परस्पर संबंध आता है, उसे भी एकता में गिनना चाहें तो गिन सकते हैं।

भारत के विशाल समाज के ऐसे टुकड़े बन गये हैं कि मानो किसी महान् सरोवर के छोटे-बड़े डबरे बन गये हों।

एक बड़ी बात को अब हमें समझ ही लेना चाहिए।

किसी भी देश में यदि सामाजिक एकता शिथिल बनी, कमजोर हुई और राजद्वारी एकता प्रधान बनी तो ऐसे समाज को अपनी सरकार के नीचे दबकर रहना पड़ता है। राष्ट्र के लिए यह स्थिति अच्छी नहीं है।

हमें तो राजनैतिक एकता से भी सामाजिक एकता अधिक मजबूत बनानी चाहिए। उसके लिए हमें भारत की तमाम सांस्कृतिक शक्ति को सुधारकर और बढ़ाकर काम में लाना चाहिए। और इस तरह एक जबरदस्त पुरुषार्थ करना चाहिए।

यदि हम हर बात को सरकार के द्वारा करने की आदत डालेंगे तो इससे सरकार की ही प्रतिष्ठा बढ़ेगी। फिर ऐसी सरकार यदि कमजोर बनी तो राष्ट्रीय एकता भी सरकार के द्वारा कायम नहीं की जा सकेगी। इसीलिए अब हमें सामाजिक एकता स्थापित करने के और बढ़ाने के सब तरह के बिना सरकारी यानी सामाजिक और सांस्कृतिक, प्रयत्न करने चाहिए। यही होगा हमारी मैत्री-भावना का सबसे बड़ा मिशन।

जातिबहुल और धर्मबहुल हमारे देश में हरएक बाड़ा, हरएक दायरा अपने ही स्वार्थ की बात सोचता है। अन्य दायरों के प्रति बिलकुल उदासीन रहता है। यह भयानक स्थिति है। मैं तो दुश्मनी से जितना डरता हूं, उससे अधिक डरता हूं, उदासीनता से, परस्पर उपेक्षा से। पूरा प्रयत्न करने से दुश्मनी दूर हो सकती है। उदासीनता दूर करने की किसी को सूझती ही नहीं। यही सबसेबड़ी मुश्किल है। परस्पर के कल्याण के प्रति इस तरह की असावधानी कितनी घातक है, उसकी हमें पूरी कल्पना ही नहीं है। लोग कहते हैं, हम अपना घर सँभालते हैं। औरों के भले-बुरे में हम दखल नहीं देते। इससे अधिक की अपेक्षा आप क्यों रखते हैं?

बहुत दफा ऐसे लोगों से मैं पूछता हूँ कि जहां हरएक दायरा अपना-अपना सँभालकर ही संतोष मानता है, वहां सबके, समस्त राष्ट्र के, समष्टि के हित के बारे में विचार करने की जिम्मेवारी किसकी?

सरकार की? ऐसा हो तो सरकार राष्ट्र से भी बड़ी बन बैठेगी। फिर उसमें प्रजातत्त्व अथवा डेमोक्रेसी नहीं रहेगी। फिर उस सरकार में या तो डिक्टेटरशिप (नादिरशाही) आयेगी अथवा पार्टीबाजी की सब तरह की हीनता आयेगी।

यदि हमें इन दोनों दोषों को दूर करना है और सामाजिक राष्ट्रीय जीवन, शुद्ध, समर्थ, समृद्ध और सक्रिय बनाना है तो मैत्री-भावना बढ़ाये बिना कोई चारा नहीं है।

इस बारे में केवल प्रचार से हम संतोष मानकर न बैठें। जो कोई केवल प्रचार करता है उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है, लेकिन कार्यशक्ति नहीं बढ़ती। मैत्री-भावना का विकास समद्ध और सक्रिय जीवन के द्वारा ही हो सकता है।

हमारे राष्ट्रीय जीवन में, राष्ट्रीय स्वभाव में और राष्ट्रीय आदर्श में जो-जो तत्त्व मैत्री-भावना को बाधक मालूम हों, उन सब तत्त्वों को ढूंढ़-ढूंढ़कर दूर करना होगा। यह काम हमारे आश्रमों का है।

आश्रम-जीवन का विकास करने वाले हम यदि समाज से अलिप्त और अलग रहेंगे तो हमारी स्थिति हमारे मंदिरों के जैसी होगी। प्रतिष्ठित लेकिन निर्वीर्य। लोग मंदिर में दर्शन के लिए भक्तिपूर्वक जाते हैं, वहां माथा टेकते हैं, दक्षिणा रखते हैं और धर्म को सजीवन तथा प्राणवान् बनाने की सब जिम्मेवारी ऐसे मंदिरों पर (और आश्रमों पर) डालकर अपनी जड़ता के साथ, स्वस्थचित्त से, घर लौटते हैं। मानो उन्होंने अपना सब कर्तव्य पूरा किया। खुद को करने जैसा बाकी कुछ रहा ही नहीं।

आइंदा के हमारे आश्रमों को धन और सत्ता के लोभ से अलिप्त रहकर, सेवा द्वारा, उत्सवों द्वारा और सामाजिक पुरुषार्थ की प्रवृत्तियों के द्वारा सारे समाज के साथ पक्षपातरहित ओतप्रोत हो जाना चाहिए।

मैत्री-भावना को इस तरह सिद्ध करना यह एक महान् सामाजिक-सांस्कृतिक युग-कार्य है। जीवन-शुद्धि की बुनियाद पर जब हम अपनी विराट सहानुभूति को पराकोटि तक पहुंचायेंगे, तभी मैत्री-भावना सिद्ध होगी।

मैं देखता हूं कि हमारे कई दोष, स्वभाव के और सामाजिक जीवन के, पुरुष-वर्ग में जितने दीख पड़ते हैं, उतने स्त्री-जाति में नहीं दीखते।

स्त्री-जाति हृदयधर्म की वफादार रही है। इसलिए मैत्री-भावना बढ़ाने का युग-कार्य स्त्री-जाति की मारफत ही ज्यादा होगी। और उसको रूप भी उनके हाथों ही ज्यादा अच्छा मिलेगा।

या देवी सर्वभूतेषु मैत्रीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

सर्वजीवन के आश्रम

ऐसा स्पष्ट दीख पड़ता है कि केवल स्वराज सरकार के प्रयत्न से भारत में समाज-सत्तावाद (Socialism) की स्थापना नहीं हो सकेगी। सरकार कानून बना सकती है, टैक्स लगाकर काफी पैसा इकट्ठा कर सकती है, इन पैसों के जोरों और बाहरी देशों के पास से लिये हुए कर्जे की मदद से बड़े-बड़े कल-कारखाने भी शुरू कर सकती है। लेकिन यह सब तभी सफल होगा, जब समाज का मानस काफी हद तक समाज-सत्तावादी बनेगा और देश के नेता भी अपना मानस और अपना जीवन समाज-सत्तावाद के अनुकूल बनायेंगे

इतनी चर्चा और प्रचार के बावजूद घूसखोरी का डर कम नहीं हो रहा है। खूबी से घूस लेकर अपने जेब भर देने वाले नेता, समाज-सेवक या सरकारी कर्मचारी अब कहीं-कहीं पकड़े तो जा रहे हैं, लेकिन समाज में उनकी प्रतिष्ठा कम होती नहीं दीख पड़ती। जिन देशों की समाज-सत्तावादी सरकारें सफलतापूर्वक राज कर रही हैं, वहां के लोगों का मानस, उनकी आदतें और उनके रस्म-रिवाज समाज-सत्ता के अनुकूल हो गये हैं। हमारे यहां अभी तक वैसा नहीं हुआ है और तुरंत होने की सम्भावना भी कम दीख पड़ती है।

समाज में जीवन का आर्थिक स्तर बढ़ाने की लगन बढ़ती जा रही है। जीवन में सात्त्विक आनन्द देने वाले पुराने उत्सव अब कहीं दीख नहीं पड़ते। आजकल के उत्सवों में न है सौख्य-समाधान और न है संस्कृति की गहराई। आजकल के उत्सवों में बड़े-बड़े समुदाय इकट्ठा होते हैं, किन्तु लोगों का जीवन ओतप्रोत नहीं होता। परस्परवलम्बन आर्थिक क्षेत्र में ही बढ़ रहा है। जीवन के समस्त अंग-प्रत्यंगों में परस्परावलम्बन बढ़ता दीख नहीं पड़ता। समाज में मानसिक स्वास्थ्य, संतोष और समाधान बढ़ने की जगह अस्थैर्य, चिन्ता और यदृच्छा का ही प्रभाव बढ़ता दीखता है। सामाजिकता के ये लक्षण नहीं हैं। सामाजिकता का प्रधान लक्षण है एक-दूसरे के सुख के लिए सोचने की ओर कष्ट उठाने की तैयारी। सबके सुख में अपना सुख देखने की आदत ही सच्ची सामाजिकता है। इसके द्वारा प्रेम, क्षमा, उदारता और आदर जैसे सामाजिक सद्गुण बढ़ते जाते हैं। अब तो परस्पर आदर कम होता दीख पड़ता है। उसकी जगह एक ओर चापलूसी और खुशामदखोरी बढ़ रही है, तो दूसरी ओर हर किसी के दोष देखकर नुकता-चीनी और टीका-टिप्पणी करने में ही मनुष्य की दिलचस्पी बढ़ रही है। सामाजिकता के लिए यह स्वभाव बाधक है।

धन की आवश्यकता जोरों से बढ़ रही है, इसलिए व्यक्ति-व्यक्ति के बीच होड़ और ईर्ष्या बढ़ती है। और राजनैतिक अधिकार पाने के लिए भी समाज के अन्दर ईर्ष्या और खींचातानी का वायुमंडल फैल रहा है।

मजदूरों में, विद्यार्थियों में, महकमे के कर्मचारियों में और यात्रियों में सामाजिकता बढ़ने की जगह झुंड-वृत्ति बढ़ती दीख पड़ती है। झुंड-वृत्ति सामाजिकता नहीं है। संघे शक्तिः कलौ युगे। झगड़ालू युग में झुंड-वृत्ति ही कारगर होती है, इस बात का अनुभव और स्वाद लोगों को मिल रहा है। फलतः सहयोग की जगह संघर्ष और सत्याग्रह की जगह दुराग्रह और हठाग्रह या हत्याग्रह संगठित होने की कोशिशें हो रही हैं।

इस सारे पतन का इलाज क्या?

इलाज एक ही है। एक दूसरे के उत्कर्ष के लिए उत्कटता से कोशिश करने वाले व्यापक सामाजिकता के छोटे-बड़े संगठन।

मनुष्य के सामाजिक जीवन के प्रारम्भ में कुदरत ने ही पति-पत्नी और बच्चे के संगठन को प्रधानता देने वाले कुलों की स्थापना की। ऐसे अनेक कुल एकत्र आकर एक-दूसरे के साथ सहयोग करने लगे, तब जातियां निर्माण हुईं। इन कुलों के और जातियों के स्वभाव-धर्म को लेकर कुल-धर्म

और जाति-धर्म बन गये। यही सच्चा और शाश्वत सनातन धर्म था। गीता में इस जाति-धर्म और कुल-धर्म को शाश्वत सनातन कहा है।

अब इस संकुचित कुल-धर्म और जाति-धर्म को तोड़कर व्यापक विराट् संगठन की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। केवल पैसे के आधार पर (Money nexus) सामाजिकता बन नहीं सकती। आधार तो रक्त-सम्बन्ध का, विवाह-सम्बन्ध का, प्रेम-सम्बन्ध का, जीवन व्यापी सहयोग का होना चाहिए। इसके लिए *अब हमारे पुराने जाति-संगठन उपयोगी नहीं हैं। जाति-संगठन न केवल राष्ट्र-संगठन के लिए बाधक है, सांस्कृतिक धर्म-संगठन के लिए भी ये जातियां अब बाधक हो रही हैं। इनको तोड़े बिना समाज में अद्यतन ताजगी और सामर्थ्य आ नहीं सकते। इसलिए समाज को चाहिए कि जीवनव्यापी नव समाज के आदर्श को सिद्ध करने वाले आश्रमों की स्थापना करे।*

इन आश्रमों में सब जातियों के और धर्मों के और भाषाओं के लोग एकत्र रह सकें, सहयोग और पुरुषार्थ कर सकें, आत्मीयता के बल पर सह-जीवन जी सकें, ऐसा वायुमंडल होना चाहिए। इन आश्रमों में केवल हिन्दू-धर्म का नहीं, किन्तु भारतीय संस्कृति की समृद्धि का जीवन प्रकट हो सके, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। कोई भी व्यक्ति धार्मिक संकुचितता आगे लाकर जीवन-समृद्धि को सुखा न दे, ऐसा ही सबका प्रयत्न होना चाहिए। जीवन निष्पाप, ईमानदार, पवित्र, परिश्रमशील और सेवापरायण होना चाहिए। इसी तरीके से हम सामाजिकता बढ़ा सकेंगे। जीवन में जब सामाजिकता आयेगी, तब समाज की आर्थिक व्यवस्था आप ही आप सुधर जायेगी। घूसखोरी के लिए उसमें अवकाश ही नहीं रहेगा। अन्याय और पक्षपात अर्थविहीन हो जायेंगे। ऐसे जीवन-आश्रमों के द्वारा ही समाज-सत्तावादी सरकार टिक सकेगी और समाज सर्वोदय की ओर प्रस्थान करेगा। ❑

चिन्तन : प्रश्न-दर-प्रश्न

सच्चाई ही आपको बदल देती है

❑ जे कृष्णमूर्ति

कर्म, अधिकतर लोगों के लिए, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अनुसार अतीत में किये गये अपने किसी अच्छे कार्य के लिए आप लाभान्वित होते हैं, और जो कुछ अशुभ आपने किया है, उसका भुगतान आपको करना पड़ता है।

प्रश्न : आपका जन्म बहुत निर्धन परिवेशवाले गाँव में हुआ, और आपका कहना है कि आपने कभी शास्त्रों का अध्ययन भी नहीं किया। कौन-से शुभ कर्म आपको इस मुक्त अवस्था तक ले आये?

कृष्णमूर्ति : यह वास्तव में बड़ा दिलचस्प प्रश्न है, यदि आप इसकी तह तक जाने में रुचि लें, इसलिए नहीं कि यह प्रश्न निजी है, अपितु इसे, इस व्यक्ति से सर्वथा अलग करके देखें। क्या है वह, जिसके चलते कोई अधिक देख पाता है; वह क्या है, जो किसी से प्रेम करवाता है; क्या है, जो उसे धरती और धरती पर की वस्तुओं के प्रति संवेदनशील बनाता है? ऐसा क्या है जिसके होने से कोई बिना शब्दों के, बिना संकेतों के ही समझ जाता है? वह क्या है जिससे किसी को दृष्टि, 'विजन' की उपलब्धि, अथवा मन के मापदंड से परे किसी तत्त्व की अनुभूति होती है? तो समस्या यह है, न कि 'किसी का जन्म किसी छोटे-मोटे गाँव में न होकर कहीं अन्यत्र क्यों नहीं हुआ', जिसका कुछ मतलब नहीं है। तो अवश्य इस पर मेरे साथ-साथ विचार करें। ऐसा क्यों है कि कोई मन तो संस्कारग्रस्त हो जाता है, ढल जाता है, धौंस में आकर किसी कार्य विशेष में लग जाता है, जब कि कोई अन्य मन ऐसा नहीं करता? क्या यह कर्म का, कारण-परिणाम का मसला है? अर्थात्, आपने भूतकाल में कुछ अच्छा किया था, और परिणामस्वरूप आप सब एक दयालु मानव हैं, या धनवान हैं, या प्रतिभा-सम्पन्न हैं, या अमुक हैं। परंतु क्या ऐसा है? क्या कारण-परिणाम इस तरह साफ-साफ बँटे और सुपरिभाषित हैं? अथवा, क्या कारण ही, परिणाम लाते हुए, फिर से कारण बन जाया करता है? अतः कोई अलग-थलग कारण-परिणाम नहीं हुआ करता, अपितु एक अटूट सिलसिला होता है कारणों और परिणामों का, परिणाम जो फिर कारण बनते रहते हैं। आप समझ रहे हैं? *कर्म, अधिकतर लोगों के लिए, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अनुसार अतीत में किये गये अपने किसी अच्छे कार्य के लिए आप लाभान्वित होते हैं, और जो कुछ अशुभ आपने किया है, उसका भुगतान आपको करना पड़ता है। लेकिन यह इतना सीधा-साफ मसला नहीं है; या है? मुझे मालूम है कि विचारहीन लोग यही कहा करते हैं, वे लोग जो सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने में लगे हैं, उस बेहुनर, उस गाँववाले के बारे में उन्हें कभी कुछ ख्याल नहीं आता है। कर्म के विषय में सोचते वक्त वे सदैव उसे कुछ हासिल करने से जोड़ दिया करते हैं : चूँकि वे अब भले काम कर रहे हैं, अगले जीवन में उन्हें ज्यादा बड़ा मकान मिलेगा, बेहतर रुतबा हासिल होगा, अधिक धन मिलेगा, वे निर्वाण-प्राप्ति के और निकट पहुँच जायेंगे, आदि-आदि। यद्यपि यह प्रासंगिक हो सकता है, परंतु निश्चित ही, मूलभूत समस्या यह नहीं है।*

तो मूलभूत, बुनियादी समस्या क्या है? *यदि हम सही प्रकार से प्रश्न कर सकें, तो इस प्रश्न की तहकीकात के जरिये इसकी असल विषयवस्तु को हम समझ पायेंगे। ऐसा क्यों है कि एक व्यक्ति में इस कदर असाधारण संवेदनशीलता होती है, लेकिन दूसरे में वह नहीं होती। यदि आप ईर्ष्या के मारे यह प्रश्न पूछ रहे हैं, तो आपको इसका उत्तर कभी नहीं मिल पायेगा। इसको हँसी में मत उड़ाइए, जनाब। इस पर सोचिए।* हममें से अधिकतर ईर्ष्या के वश ही पूछा करते हैं क्योंकि वही चीज हम भी चाह रहे होते हैं; अतः हमारा प्रश्न ही ठीक नहीं हुआ करता। तो ऐसा क्योंकर होता है कि कोई मन तो संस्कारबद्ध होता है तथा कोई और, नहीं होता? आप आसानी से कह सकते हैं कि ऐसा कर्मवश है, या इस सारे प्रकरण को किसी मनोतरंग का, कल्पना का विषय बता देते हैं; परंतु यकीनन, यह तो कोई उत्तर नहीं हुआ। क्यों एक मन विशेष, जिस पर दबाव डाला जाता है, जो जीवन के तमाम तनावों और खींचतान से होकर गुजरता है, इतना कुछ देखता है, और एक भिन्न रूप में उभर कर उस सबसे बाहर आता है? यह क्यों कर होता है? क्या यह वनस्पति-विज्ञान अथवा खेल के क्षेत्र की कोई विरल वस्तु है? या, यह कुछ ऐसा है जो हर एक के लिए सम्भव है? यदि यह एक विरल घटना है, तो इसका कोई महत्त्व नहीं। अमूमन आप इसे किसी अजायबघर में लेबल लगाकर रखने के उपरांत भुला सकते हैं—जैसा कि हम आम तौर पर किया करते हैं; उस शख्स को बस हम कोई संज्ञा दे देते हैं, संत, या उस किस्म की कोई और मूढ़तापूर्ण पदवी। परंतु यदि आप वस्तुतः जानना चाहते हैं, तो आपको स्वयं यह पता लगाना होगा कि क्या ऐसा कोई यथार्थ, कोई वास्तविकता है, जिसे फौरन समझा जा सकता है, न कि समय की प्रक्रिया के जरिये।

एक यथार्थ, एक सच्चाई है—कृपया सुनिए, जनाब—एक सच्चाई है जिसकी मन से अचानक भेंट होती है, और यह मन को रूपांतरित कर देती है। आपको कुछ भी करना नहीं पड़ता। यही सक्रिय होता है, यही काम करता है, इसका अपना एक 'होना' होता है; परंतु मन को इसे महसूस करना होगा, जानना होगा, यह नहीं कि वह इसके बारे में अटकलबाजी करता रहे, या किस्म-किस्म की धारणाएँ बनाता रहे। वह मन जो इसकी तलाश में लगा है, इसे कभी नहीं पा सकेगा; परंतु निर्विवाद रूप से, एक ऐसी स्थिति होती तो है। ऐसा कहने में मैं किसी अन्दाजे से काम नहीं ले रहा हूँ, न ही इसे गुजरे कल के किसी अनुभव के तौर पर बयान कर रहा हूँ। *ऐसा है, बस।* उस स्थिति का अस्तित्व है; और यदि आप इसमें हैं, तो आप पायेंगे कि सब कुछ सम्भव है, क्योंकि वह सृजन है, वह प्रेम है, वह करुणा है। परंतु आप इस तक किसी साधन, किसी पुस्तक, किसी गुरु अथवा संगठन के माध्यम से नहीं आ सकते। *कृपया इस सच को आप जरूर महसूस कर लें कि आप किसी साधन द्वारा इस तक नहीं आ सकते। कैसा भी ध्यान आपको इस तक नहीं पहुँचाने वाला है। जब आपको यह प्रतीति, यह अहसास हो जाता है कि कोई दण्ड-विधान, आचरण का कोई प्रतिमान, कोई गुरु, कोई पुस्तक, कोई संस्था, कैसा भी सत्ता-प्रामाण्य आपको उस स्थिति तक नहीं ले जा सकता, तो आपने इसे पा ही लिया होता है। तब आपको पता चलेगा कि वह मन, उस सृजन का एक उपकरण मात्र है।* और उस मन के माध्यम से कार्य करता यही सृजन एक पूरी तरह से भिन्न संसार को वजूद में लाएगा—राजनीतिज्ञों अथवा धार्मिक-सामाजिक सुधारकों द्वारा आयोजित संसार नहीं—क्योंकि यह सृजन स्वयं में ही अपना यथार्थ है, अपनी अनंतता है।

('परिसंवाद' से साभार) मद्रास, 23 दिसंबर, 1956

मनुष्य की बुद्धि में प्रश्न यह है कि सही क्या है?

❑ प्रदीप कुमार सिंह 'पाल'

सदियों से मानव समाज में अनेकों प्रकार की धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों ने समाज के विकास में बाधाएँ उत्पन्न की हैं। अंधकार का कोई अस्तित्व नहीं होता है। प्रकाश का अभाव ही अंधकार है। संसार में अज्ञान का बहुत अँधेरा है यदि उसे हम गाली देकर या लाठी देकर भगाने की कोशिश करेंगे तो वह नहीं भगेगा। हमें अंधेरे को भगाने के लिए एक दीप जलाने की कोशिश करनी पड़ेगी।

तर्क दो तरह के होते हैं। पहला तर्क वह है, जिससे हम औरों को गलत साबित करना चाहते हैं। वह क्या कह रहा है, इससे कोई खास लेना-देना नहीं है। बस, उसे गलत ठहराना ही है। इस तर्क से केवल हम अपने अहंकार को सिद्ध करना चाहते हैं। ऐसा तर्क व्यर्थ तथा भ्रष्ट है, इसको भारत की बौद्धिकता अर्थात विवेक ने कुतर्क कहा है। कुतर्क को कैसे भी और कितना भी विकसित कर लिया जाए, इससे किसी मनुष्य के जीवन का न तो कल्याण हो सकता है और न ही जीवन का रूपांतरण। इसके अलावा इससे भिन्न एक तर्क और भी है। इसका प्रयोग विवेक की खोज के लिए होता है। तब सवाल यह नहीं है कि दूसरा गलत है। तब सवाल यह है कि सही क्या है?

कौन कह रहा है, यह कीमती तथा विशेष नहीं है। विशेष यह है कि सत्य क्या

है? इस तर्क के लिए कोई व्यक्ति नहीं वरन् सत्य मूल्यवान है जो सच है, वही सच है, फिर वह मेरे पक्ष में हो अथवा विपक्ष में। ऐसा तर्क सत्य को परखता है। उसे सोने की तरह परखता है कसौटी पर। ऐसा तर्क विचार की क्षमता, निर्णय और निर्णय का शास्त्र एक कला है। ऐसी स्थिति में पक्ष या विपक्ष कोई कसौटी नहीं होता। कसौटी होता है तर्क, एकदम निष्पक्ष कसौटी। इसमें अपने को भी उसी पर कसना होता है और दूसरों को भी उसी पर कसना होता है। जो मेरे लिए सत्य है वही किसी और के लिए भी सत्य है। यह सत्य के खोजी की साधना है। परहित या लोक कल्याण ही सत्य है तथा उसका उलटा किसी को पीड़ा पहुंचाना असत्य है।

सदियों से मानव समाज में अनेकों प्रकार की धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों ने समाज के विकास में बाधाएँ उत्पन्न की हैं। अंधकार का कोई अस्तित्व नहीं होता है। प्रकाश का अभाव ही अंधकार है। संसार में अज्ञान का बहुत अँधेरा है यदि उसे हम गाली देकर या लाठी देकर भगाने की कोशिश करेंगे तो वह नहीं भगेगा। हमें अंधेरे को भगाने के लिए एक दीप जलाने की कोशिश करनी पड़ेगी। इसलिए कहा जाता है कि अज्ञान रूपी अंधकार को धिक्कारने में क्यों समय बरबाद करें, इसमें अपना समय बरबाद होने से बचाना विवेक बुद्धि है। संसार में मनुष्य की समझ की दो श्रेणियाँ हैं—एक सहज बुद्धि तथा दूसरी विवेक बुद्धि। जो मनुष्य केवल खाने, सोने, भय, बच्चे पैदा करने तक सीमित रहता है, उस प्रकार के मनुष्य को सहज बुद्धि की श्रेणी में गिना जाता है। पशु की समझ भी खाने, सोने, भय, बच्चे पैदा करने तक सीमित है। जिन मनुष्यों में खाने, सोने, भय, बच्चे पैदा करने के अलावा अच्छे-बुरे कार्यों की विवेकपूर्ण बुद्धि भी होती है। वे मनुष्य विवेक बुद्धि की श्रेणी में आते हैं।

अपने अस्तित्व के परम उद्देश्य को जानने की विवेक की विद्या ऐसी परम विद्या है, जिससे हम अपने स्वयं को जानते हैं। सम्भव है विवेक बुद्धिवाला व्यक्ति कुछ और न जानता हो, पर वह स्वयं को जरूर जानता होगा। महात्मा कबीर ने घोषित किया—मसि कागद छुओ नहिं, कलम गहवो नहि हाथ। यानी कागज, स्याही, कलम को हाथ नहीं लगाया। दुनिया की सारी विद्याएँ तो इसी पर निर्भर हैं। इन्हें पढ़ने, सीखने, जानने, समझने के लिए स्याही, कागज, कलम को पकड़ना पड़ता है। इन्हें हाथ लगाना पड़ता है, लेकिन इनके बगैर ही वह स्वयं को जान गये। उन्होंने कुछ और नहीं, बल्कि विवेक की विद्या सीखी। यही स्थिति संसार के अनेक महापुरुषों की थी। संसार तो नहीं पढ़ा, पर अपने अस्तित्व के सत्य को पढ़ा और स्वयं को जान गये।

जीवन के विकास के लिए संसार में विद्याएँ अनेकों हैं, इन्हें अनंत भी कहा जा सकता है, लेकिन अपने अस्तित्व के परम उद्देश्य को जानने की विवेक की विद्या गुणवत्ता की दृष्टि से अलग है। अगर कोई फिजिक्स जाने, तो कोई केमिस्ट्री का जानकार हो जाए, कोई ज्योतिष अथवा संगीत जान ले और भी बहुत सारी विद्याएँ हैं, उन्हें जान ले, कितना भी ज्ञानी अथवा पारंगत हो जाए तो भी अपने से अनजान, अपरिचित रहता है। बड़े से बड़ा संगीतकार खुद के स्वरों से अपरिचित रहता है। सारे वाद्यों को बजा लेने की क्षमतावाले व्यक्ति की स्वयं के भीतर की वाणी सूनी और अनछुई ही रह जाती है। इसी तरह जो गणित के सर्वश्रेष्ठ जानकार हैं, वे कितनी संख्याओं को क्यों न जोड़-घटा लें, लेकिन स्वयं संख्या एक की यों ही रह जाती है।

हमें पूरे मन से जो प्रमाणित रूप से सही है उस विवेक तथा ज्ञान रूपी प्रकाश को सर्वजन सुलभ बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगाकर समाज को प्रकाशित करना चाहिए। कहते हैं जिनके पास सच्चाई को बताने के लिए पर्याप्त, प्रमाणित तथा संतुलित शब्द होते वे अपना पक्ष प्रमाण के साथ रखकर विपक्ष का हृदय भी जीत लेते हैं। वहीं दूसरी ओर पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यक्ति सच्चाई को बताने के लिए कठोर शब्दों का सहारा लेता है। इस प्रकार वह पक्ष तथा विपक्ष दोनों को ही घायल कर देता है। किसी समाजोपयोगी विचार में आग से भी अधिक गर्मी होती है। इस विचार की सार्थकता तभी है जब उसे सर्वजन सुलभ बनाया जाये।

स्वयं को जानने से ही जीवन का परम आनन्द घटित होता है। अंततः मृत्यु के पार ले जानेवाला जो शाश्वत सूत्र है, वह स्वयं को जानने से घटित होता है। *सारा कुछ जाना हुआ, सीखा हुआ, अंततोगत्वा पड़ा रह जाएगा, जो मेरे साथ जीवन के अंतिम क्षण तक रहेगा, वह केवल मेरे स्वयं का बोध है। वैसे भी ज्ञान वही है, जो मौत के पार जा सके। सच्चा ज्ञान उसी को कहेंगे, जिसे चिता की लपटें भी न जला सकें। मृत्यु जिसे नष्ट कर दे, वह तो ज्ञान है ही नहीं। बौद्धिक तथा विवेक बुद्धिवाले व्यक्ति मरने के बाद भी संसार में अपने समाजोपयोगी विचार तथा कार्यों के कारण युगों-युगों तक जीवित रहते हैं। मौत के समय ही ज्ञान की परख होती है।* बहुत कुछ जानने, सीखने, बोलनेवाले मरते वक्त बड़े ही दीन-हीन हो जाते हैं, लेकिन सत्य के खोजी नहीं होते। वह मृत्यु के क्षण भी अपने सत्य के ज्ञान में जीते हैं। ऐसे व्यक्ति ही कबीर ने विवेक विद्या को जानकर ही घोषणा कर दी—जिहि मरने ते जग डरै, मेरे मन आनंद।

समाज का आधार आत्मीयता, एकता एवं पारिवारिकता की इस वैचाकि अभियान में धुरियों पर टिका हुआ है। हम लोग हमेशा बौद्धिक तथा वैचारिक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहेंगे। साथ ही नये लागों को भी जोड़ने के लिए प्रयासरत रहेंगे। ❑

साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता और शहीद भगत सिंह

❑ सुजाता

''हिन्दू और मुसलमान जानवर बन जाते हैं, पर उन्हें याद रखना चाहिए कि वे झुकी हुई कमर वाले जानवर नहीं हैं, सीधी कमर वाले मनुष्य हैं। इसलिए घोर विपत्तियों में उन्हें धर्म और श्रद्धा नहीं छोड़नी चाहिए।''

महात्मा गांधी का एक जीवन दर्शन था, जिसमें भगत सिंह की देशभक्ति तो शामिल थी, पर उनके हिंसात्मक साधनों को वे अपने दर्शन में एक तिल का स्थान भी नहीं देते थे। पर इसका मतलब यह हरगिज नहीं था कि महात्मा गांधी और भगत सिंह में कोई साम्यता नहीं थी...। बहुत सारे मुद्दे ऐसे हैं जिन पर दोनों के विचार एकदम एक हैं। जैसे—हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता, स्वतंत्रता, समानता आदि।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए महात्मा गांधी के विचार और कार्य सर्वविदित हैं। महात्मा गांधी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सिर्फ अपनी जान की बाजी ही नहीं लगा देते हैं, बल्कि अपने ईश्वर से भी गुहार लगाते हुए कहते हैं—''मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या को छोड़ने का साहस नहीं करता। परंतु लगता है यह मनुष्य के हाथों से निकल गयी है, इसका उपाय केवल ईश्वर के हाथों में है। जैसे द्रौपदी को उसके पतियों ने, मनुष्यों ने, देवताओं ने त्याग दिया था और उसने केवल ईश्वर से ही सहायता की प्रार्थना की थी और ईश्वर ने उसको सहायता दी थी, वैसी ही दशा मेरी है। हममें से हरएक को ऐसा ही सोचना चाहिए। *हमें सर्वशक्तिमान ईश्वर से ही सहायता माँगनी चाहिए और उसीसे कहना चाहिए कि उसकी सृष्टि के हम तुच्छ प्राणी अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सके हैं। हम एक-दूसरे से घृणा करते हैं, हम एक-दूसरे का अविश्वास करते हैं, हम एक-दूसरे का गला पकड़ते हैं और एक-दूसरे की हत्या भी कर देते हैं। हमें उसी प्रभु से हार्दिक पुकार करनी चाहिए कि वे हमारे हृदयों से इस घृणा को दूर करके उन्हें शुद्ध बनायें।* हम एक-दूसरे का अविश्वास करके और एक-दूसरे से डरकर, उसकी इस पृथ्वी को, उसके नाम को और इस पवित्र देश को बदनाम कर रहे हैं। यद्यपि हम इसी मातृभूमि की संतान हैं, इसी का अन्न खाते हैं, फिर भी हमारे मनों में एक दूसरे के लिए गुंजाइश नहीं है। हमें ईश्वर से पूर्ण विनम्रता के साथ प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमें समझ और ज्ञान दें।

''हिन्दू और मुसलमान जानवर बन जाते हैं, पर उन्हें याद रखना चाहिए कि वे झुकी हुई कमर वाले जानवर नहीं हैं, सीधी कमर वाले मनुष्य हैं। इसलिए घोर विपत्तियों में उन्हें धर्म और श्रद्धा नहीं छोड़नी चाहिए।''

पर शायद *भगत सिंह* के इस विचार की जानकारी बहुत कम लोगों को है कि वे साम्प्रदायिकता को उतना ही बुरा मानते थे, जितना कि साम्राज्यवाद को। उन्होंने स्वयं कहा कि *''साम्प्रदायिकता समाज की उतनी ही बड़ी दुश्मन है, जितना साम्राज्यवाद।''*

भगत सिंह का भी मानना था कि धर्म एक व्यक्तिगत चीज है, निहायत व्यक्तिगत; इसे किसी भी हाल में सार्वजनिक नहीं करना चाहिए।

भगत सिंह आदि ने जिस 'नौजवान भारत सभा' की संरचना की, उसमें भी एक नियम पारित किया था कि इसका कोई भी सदस्य किसी भी रूप में किसी भी साम्प्रदायिक गुट से किसी तरह का संबंध नहीं रखेगा, क्योंकि उस समय नौजवान धार्मिक-साम्प्रदायिक नेताओं से, जो देश की आजादी के दुश्मन अंग्रेजों के हाथों में खेल रहे थे, बहुत चिढ़े हुए थे। क्रांतिकारियों की सोच थी कि साम्प्रदायिक नेता साम्प्रदायिक दंगे करवाते हैं, और हमारी आजादी की लहर के विकास की राह में बाधाएँ डालते तथा कठिनाइयाँ पैदा करते हैं।

नौजवान भारत सभा में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव भगत सिंह की अगुआई में पास हुआ कि किसी भी धार्मिक संगठन से जुड़े नौजवान को इसमें नहीं लिया जा सकता, क्योंकि धर्म व्यक्ति का निजी मामला है, और साम्प्रदायिकता हमारी दुश्मन है और जिसका हर हाल में विरोध किया जाना चाहिए।

1919 के जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों का खूब प्रचार शुरू किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना में साम्प्रदायिक दंगों पर लम्बी बहस चली। इन्हें समाप्त करने की जरूरत तो सबने महसूस की, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम नेताओं ने सुलहनामा लिखाकर दंगों को रोकने के यत्न भी किये।

ऐसे अवसर पर *भगत सिंह* ने अपना विचार रखा— *''भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर*

शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यकीन न हो, तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिन्दुओं को मारा है, और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गयी कि फलां आदमी दोषी है, वरन् इसलिए कि फलां आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। बस, किसी व्यक्ति का सिख या हिन्दू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था, और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो, तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है।''

''ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अंधकारमय नजर आता है। इन 'धर्मों' ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि ये धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अंधविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठंडा रखता है, बाकी डण्डे-लाठियाँ, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सिर फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाकी बचे कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डंडा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने पर आ जाता है।

''जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिक नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया था और जो 'स्वराज-स्वराज' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठने वालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता, जो साम्प्रदायिक आंदोलन में जा मिले हैं, वैसे तो जमीन खोदने से सैकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं, और साम्प्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

''दूसरे सज्जन, जो साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, वे अखबार वाले हैं।

''पत्रकारिता का व्यवसाय, जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत ही गंदा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक, जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शांत रहा हो, बहुत कम हैं।

''अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था, लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिकता बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं, और दिल में सवाल उठाता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

''यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से, जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं, और उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नजर से, हिन्दू, मुसलमान या सिख रूप में नहीं, वरन् सभी को पहले इन्सान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है और भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए, बल्कि तैयार-बर-तैयार हो यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण बने, ताकि दंगे हों ही नहीं।'' *('गांधी और भगत सिंह' पुस्तक से)* ❑

धर्मान्धता मानवता की शत्रु है

❑ **स्वामी विवेकानंद**

''साम्प्रदायिकता, धार्मिकता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को ध्वस्त करती और पूरे देश को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स व दानवी शक्तियाँ न होतीं तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उसका समय आ गया है और आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार और लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारम्परिक कटुताओं का मृत्यु-नाद सिद्ध होगा।''

(विश्व-धर्म महासभा, शिकागो में 11 सितम्बर, 1893 को दिये गये भाषण से)

आतंकवाद

बांग्लादेश : तलवार से दाढ़ी बनाने का खामियाजा

❑ चिन्मय मिश्र

बांग्लादेश के एक रेस्टारेण्ट में 20 लोगों की हत्या ने कुछ ऐसे प्रश्न खड़े कर दिये हैं, जिनका सामना कर पाना कठिन है। बंगाल से पूर्वी पाकिस्तान और फिर बांग्लादेश बनने का सफर इस भूभाग ने महज 25 वर्ष में पूरा कर पूरी दुनिया को आश्चर्य में डाल दिया था। गौरतलब है बंगाल का यह हिस्सा सन् 1947 में भारत से अलग हुआ था। यह दुनिया का एकमात्र देश है जिसकी स्वतंत्रता के मूल में न तो धर्म है न ही भूभाग, बल्कि उसकी भाषा है। महान बंगाली भाषा। फिर वहाँ इस तरह के अतिवाद की गुंजाइश कैसे परवान चढ़ गयी। धर्मनिरपेक्ष ब्लागर्स की हत्या, हिन्दू धर्मावलम्बियों की हत्या, समलैंगिकों की हत्या रोजमर्रा की बात बन गयी। परन्तु सारी दुनिया जिसमें भारत और इसका अधिकांश समाज भी शामिल है, इसे महज इस्लामी कट्टरवाद का शिकार बता रहे हैं। कल्पना कीजिए ऐसे राष्ट्र की जिसका राष्ट्रगीत किसी दूसरे राष्ट्र के नागरिक (रवीन्द्रनाथ टैगोर) ने लिखा हो। रवीन्द्रनाथ टैगोर की वैश्विकता और बांग्लादेश के नागरिकों की बौद्धिक परिपक्वता दोनों को यदि एक साथ देखेंगे तो ही हम समझ पाएँगे कि इस आधुनिक विश्व में बांग्लादेश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देशों में से एक क्यों है। इस देश की स्वतंत्रता ने विश्व के भविष्य को नये मायने देने की कोशिश की थी।

परन्तु वैश्वीकरण सिर्फ आर्थिक विकास का सूचक ही है अतएव उसमें स्थानीयता जहर का काम करती है। इसीलिए इस देश के बनने के साथ ही इसे नष्ट करने या भ्रष्ट करने की साजिशें भी शुरू हो गयी थीं। बंग बंधु शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या इसी शृंखला की पहली कड़ी थी। इस वर्ष खुजराहो नृत्य समारोह के दौरान बांग्लादेश की जानी मानी शोधकर्ता, लेखक, नृत्यांगना, संस्कृति एवं मानवाधिकार कार्यकर्ता लुबना मरियम से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे ढाका में ''साधना कला केन्द्र'' संचालित करती हैं और खजुराहो में मणिपुरी शास्त्रीय नृत्य की समूह प्रस्तुति के लिए आयी थीं। वे टैगोर की रचनाओं को भी नृत्य में ढालती हैं। बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि पाकिस्तान की फौजी सरकार के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों के दौरान वह स्वयं और उनके तमाम साथी ढाका में सड़कों पर कथक, भरतनाट्यम जैसे शास्त्रीय नृत्यों के माध्यम से प्रदर्शनकारियों को न केवल मनोरंजन करते थे बल्कि उन्हें प्रेरित भी करते थे। बंदूकों के खौफ को नृत्य से तिरोहित करने का करिश्मा शायद बांग्लादेश में ही सम्भव है। परंतु हम सबकी समस्या यह है कि हम आतंक का हल केवल बल प्रयोग द्वारा ही सम्भव मानते हैं। विचार को औजार बनाने जितना धैर्य शायद अब हममें नहीं बचा है।

बांग्लादेश के राष्ट्रकवि *काजी नजरूल इस्लाम* नौ बरस की उमर में मुल्ला बन चुके थे, मस्जिद में रहते थे और फकीर कहलाने लगे थे। अचानक एक दिन बाउल गायक हो गये और अपनी संगीत मंडली बना ली। अपने दल का नाम रखा *''लोटा दल''*। वे पीर की मजार पर *''चंडी पाठ''* सुनाते थे। समय बदला नजरूल धुरंधर वामपंथी हो गये और जीवनभर बने रहे। परंतु उन्होंने जो प्रतीक चुने वह कुछ और तरह से बहुत कुछ समझाते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता विद्रोही की पंक्तियां हैं,

मैं धूमकेतु की ज्वाला विषधर काल फणि हूँ,
मैं छिन्नमस्ता चंडी हूँ, मैं सर्वनाशी रणदा हूँ,
मैं जहन्नुम की आग में बैठकर पुष्पहास हँसता हूँ।

परंतु हमने तो हथियारों के उद्योग को दुनिया का भविष्य बना लिया है। नयी सरकार के गठन के बाद उम्मीद थी कि बांग्लादेश एक परिपक्व देश की तरह व्यवहार करेगा। लेकिन सन् 1971 के स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान उस पर हुए अत्याचारों को भूलने के बजाए बदला या कथित न्याय की जिद ने चरमपंथियों को सीमित मात्रा में ही सही अपनी पैठ बनाने का सुनहरा मौका दे दिया। हम सभी जानते हैं कि अतिवादी हमेशा सीमित होते हैं लेकिन ऐसा लगने लगता है कि उन्हें व्यापक सामाजिक स्वीकार्यता मिली हुई है। इसके लिए अपरिपक्व राजनीतिज्ञ अधिक जिम्मेदार हैं। वे उन्हें प्रदत्त अधिकारों का न्यायपूर्ण ढंग से प्रयोग करना ही नहीं जानते। वैसे भी दुनिया भर के राजनीतिज्ञों ने यह मान लिया है कि सिर्फ आर्थिक विकस ही सम्पूर्ण विकास है। *रवीन्द्र बाबू* ने *काजी नजरूल इस्लाम* के सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने पर उनसे कहा था, *''तुमने तलवार से दाढ़ी बनाने का काम लेना प्रारम्भ कर दिया है।''* परन्तु आज पूरी राजनीतिक जमात तलवार से दाढ़ी बनाने को अपना सूत्र वाक्य बना बैठी है। जबकि काजी इसकी व्यर्थता समझ चुके थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता सव्यसाची में लिखा भी था—

मच्छर मार कर गरजती है तोप...
''विप्लव कर दिया''
हमारे दाहिने हाथ में है हथकड़ी,
बायें से मारते मक्खी।
छिपकली की छींक से मान सैकड़ों असगुन,
चोटी दाढ़ी लेकर आज भी जीवित है।
जीवित रहते-रहते प्रायः मर चुके,
अब तो सब्यसाची जो भी हो
कुछ तो हाथ में दे दो :
एक बार मरकर जी उठें।

इस हमले के बाद यह बात भी जोर शोर से की जा रही है कि अब सम्पन्न घरों के बच्चे भी इस्लामी आतंकवादी होते जा रहे हैं। परंतु हम यह भूल जाते हैं कि इस कट्टरवाद को फैलानेवाले दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देश सऊदी अरब और अमेरिका क्या गरीब देश हैं? और यह आतंकवाद अफ्रीका और एशिया के गरीब देशों को ही अपनी पकड़ में क्यों ले रहा है? बांग्लादेश

इसका नवीनतम उदाहरण है। भारत अभी तक इसीलिए बचा रहा कि तमाम बुराइयों के बावजूद इस देश की नींव लोकतंत्र में है और गांधी, नेहरू, अम्बेडकर, मौलाना आजाद जैसे तमाम नेताओं ने अपने अनेक अंतरविरोधों के बावजूद देश के धर्मनिरपेक्ष कलेवर को चोट नहीं पहुंचने दी।

वहीं दूसरी ओर दुनिया में बढ़ते आतंकवाद और धार्मिक कट्टरता के बीच भारत सरकार ने बजाए सभी धर्मों के मर्मज्ञों से पूर्व सलाह लिये समान नागरिक संहिता लागू करने हेतु कानून आयोग से मशविरा माँग लिया और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक दर्जे के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में दायर चाचिका से स्वयं को अलग कर लिया। अब इसका क्या प्रभाव पड़ेगा यह तो आने वाला समय ही बताएगा। किसी भी विषय पर बिना विस्तृत सामूहिक चर्चा के अपने हित में निर्णय ले लेने की यही प्रवृत्ति सारी दुनिया पर भारी पड़ रही है। नजरूल इस्लाम ने लिखा है—

मेरे एक हाथ में तेढ़े/बाँस की बँसी है/और
दूसरे हाथ में रणभेरी/मैं नीलकंठ हूँ।
मैंने वेदना के समुद्र से मंथन विषपान किया है।

परंतु आज तो असहमति के लिए गुंजाइश ही नहीं बची है। सारी दुनिया का सामाजिक ताना-बाना चूर-चूर होता जा रहा है। अभी 4 जुलाई को अमेरिका ने अपना स्वतंत्रता दिवस मानाया। याद आया कि फेंड्रिक डगलस ने 4 जुलाई 1852 को अमेरिका की *'स्वतंत्रता की घोषणा'* दस्तावेज को लेकर कहा था, *''गोरे लोगों, यह तुम्हारा संविधान है, हमारा नहीं।''* उन्होंने यह भी कहा था, *''अमेरिका अतीत में भी गलती पर था, वह वर्तमान में भी गलती पर है और वह स्वयं को भविष्य में भगलत बने रहने पर बाध्य कर चुका है।''* अब वह गलती पूरी दुनिया पर हॉवी हो चली है। गौर करिए आज अमेरिका की जेलों में जितने काले कैदी मौजूद हैं, उतनी संख्या में काले लोग वहाँ कभी गुलाम नहीं रहे।

बांग्लादेश की जनता *''मंथन विषपान''* से अभी भी पीछे नहीं हटी है। आवश्यकता इस बात की है कि बांग्लादेश की सार्वभौमिकता और धर्मनिरपेक्षता को नष्ट होने से बचाने के लिए इस आत्मघाती वैश्वीकरण को रोका जाए। यह आर्थिक वैश्वीकरण अपने प्रचार के दम पर वास्तविकताओं को झुठला रहा है। काजी लिखते हैं—

''मैं उनके गीत गाता हूँ/जिनका यौवन
आज/प्रचंड गर्व से सान पर चढ़ी हुई तलवार
हाथ में लेकर, असम्भव के अभियान में
सभी दिशाओं की ओर बाहर निकल पड़ा है।''

बांग्लादेश को शुभकामनाएँ। ❑

3 सितम्बर, 2016 से प्रारम्भ शांति सद्भावना साइकिल यात्रा

(कोकराझार, आसाम से जम्मू-कश्मीर)

सर्व सेवा संघ, गांधी शांति प्रतिष्ठान एवं अन्य गांधीवादी सहमनाव संगठनों ने देश में एकता एवं सद्भावना कायम रखने के उद्देश्य से 3 सितम्बर से 3 नवम्बर, 2016 तक 60 दिवसीय साइकिल यात्रा कोकराझार, आसाम से जम्मू-कश्मीर तक आयोजित की है।

ज्ञातव्य है कि अगस्त, 2012 में सर्व सेवा संघ एवं गांधी शांति प्रतिष्ठान ने देश की अन्य गांधी विचार प्रणीत संस्थाओं के साथ कोकराझार में 'शांति यात्रा' का कदम बढ़ाया था, वह काल कोकराझार ही नहीं पूरे बी. टी. ए. डी. के लिए भीषण दुर्भाग्यपूर्ण काल था, इस क्षेत्र के 114 नागरिक उस हिंसा में मारे गये थे, चार लाख से भी अधिक लोग बेघर होकर शरणार्थी कैम्पस में पड़े थे और हजारों हजार घर जला दिये गये थे।

पिछले चार वर्षों में बी.टी.ए.डी. के चार और आसपास के कुछ अन्य जिलों के गांवबुढ़ा (ग्राम मुखिया), युवा पीढ़ी युवक व युवतियों, शिक्षकों एवं शिक्षण संस्थाओं तथा यहां के राजनोताओं व अन्य नागरिकों ने 'शांति यात्रा' को भरपूर सहयोग तो दिया ही, इस कार्य को अपनी जिम्मेवारी मानकर इसे अपनाया भी है। 'शांति यात्रा' अब स्थानीय जनों के संगठित प्रयास 'गांधी शांति संघ' कोकराझार के रूप में सक्रिय हुई है। इस अवधि में 'शांति यात्रा' के साथियों द्वारा घर-घर, गांव-गांव, कैम्प-कैम्प (शरणार्थी कैम्पस) से किये गये सम्पर्क से, गांवबुढ़ा लोगों की बैठकों, जनसभाओं, युवा शिविरों, युवा टोलियों के देश भ्रमण व युवा साइकिल-यात्रा से इस क्षेत्र का वातावरण गांधी-प्रणीत अहिंसा व शांति की ओर अभिमुख हुआ है।

आज सर्व सेवा संघ अन्य गांधी विचार-बिरादरी के सहयोग से कोकराझार देश को शांति, सद्भावना एवं सौहार्द का संदेश देने के लिए एक 'शांति सद्भावना साइकिल यात्रा' कोकराझार से कश्मीर तक 3 सितंबर 2016 को प्रारम्भ करने का जा रहा है। गांधी बिरादरी इस शांति सद्भावना साइकिल यात्रा को महात्मा गांधी और माता कस्तूरबा गांधी की 150वीं जयंती तथा आचार्य विनोबाव भावे की 125वीं जयंती को श्रद्धापूर्वक अर्पण कर रहा है। 60 दिनों तक चलने वाली इस यात्रा में विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं जातियों के 25 युवक-युवतियां साइकिलों पर चलेंगे और देश के अनुभवी सर्वोदय कार्यकर्ता तथा प्रबुद्ध विचारक अन्य वाहनों पर साथ चलेंगे। यात्रा के दौरान यात्री दल असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और जम्मू-कश्मीर प्रदेशों में घूमेगा।

इस साइकिल यात्रा का उद्देश्य देश के आमजन, विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, पंथों, जातियों और राजनेताओं व उनके दलों से अपील करना है कि वे देश में भेदभाव मुक्त समानता, सद्भावना, मैत्रीभाव व एकता का वातवरण बनायें, आपसी समझ बढ़ा कर सम्बन्धों की मधुरता फैलायें, जिससे एक समता व समरसता पूर्ण अहिंसक समाज की रचना हमारे देश में हो सके। द्वेष, नफरत व भेदपूर्ण भावनाओं तथा कट्टरपंथी विचारों से उद्वेलित समाज का बिखराव दूर हो सके और एक बहुआयामी सुगठित, स्वस्थ अनेकता में एकता वाला समाज भारत को एक मजबूत देश बनाये। इसके लिए यात्रा की राह में पड़ने वाले नगरों-गाँवों विद्यालयों, महिला मंडलों, धार्मिक समुदायों आदि में जन सभाएँ आयोजित होंगी। पत्रकार वार्ताओं तथा विशेष भेंटों का भी आयोजन किया जायेगा।

शांति के प्रयास में! **–चंदन पाल**

संयोजक, कोकराझार से कश्मीर साइकिल यात्रा
मो. 9433022020

दलित-विमर्श

जाति-निर्मूलन का सवाल

❑ वि. प्र. दिवाण

शक्ति या ताकत कम होना गुनाह नहीं है। लेकिन जो शक्ति है, उसका उपयोग न करना गुनाह है। आज हमारे पास जो भी शक्ति है उसका उपयोग हम नहीं करेंगे तो हम गुनाहगार माने जायेंगे। काल हमें माफ नहीं करेगा।

गुजरात में मरे हुए गाय-बैलों की खाल उतारने वाले दलितों को गोरक्षकों ने बेरहमी से पीटा। प्रतिक्रिया के रूप में दलित आक्रमकता के साथ रास्ते पर उतरे। 1927 में डॉ. बाबासाहब अम्बेडकरजी ने जो आवाहन किया था, उसे दोहराते हुए दलितों ने कहा कि इसके आगे दलित गुजरात में मरे पशुओं की खाल उतारने का काम नहीं करेंगे। जाति व्यवस्था पर किया गया यह सबसे प्रखर प्रहार है।

दलित ही गोरक्षक : मरे गाय-बैलों की खाल अगर न उतारी गयी तो, चमड़े के लिए जिन्दे गाय-बैलों की कत्ल करनी ही पड़ेगी। इसका दूसरा अर्थ यही है कि हजारों बरस से मरे गाय-बैलों की खाल उतार कर दलितों ने गो-रक्षण का ही काम किया। गो-रक्षण का श्रेय दलितों को देने की बात तो दूर ही रही, तथाकथित गोरक्षकों ने उन्हें पीटा।

गोशाला चलाने से गो-सेवा होती है, मरे गाय-बैलों की खाल उतारने से गो-रक्षण नहीं होता है, यह बात समझ लेना जरूरी है।

बहिष्कृत जीवन : गांधीजी की प्रेरणा से 1934 में महाराष्ट्र में गोपालराव वालुंजकरजी ने सर्वप्रथम मृत पशुओं के शवच्छेदन का काम हाथ में लिया। इसके बाद महाराष्ट्र में बाबा फाटक, अप्पासाहब पटवर्धन, भास्कर रानडे, रमाकांत आर्ते आदि ने इस काम को आगे बढ़ाया।

मरे पशुओं का खाल निकालने के कारण बाबा फाटकजी को उनके घर वालों ने घर से बाहर निकाल दिया। अप्पासाहब पटवर्धनजी को 'सुअर' की उपाधि गांव वालों ने दी। भास्कर रानडेजी को घर के ही लोग जिस तरह से दलितों को ऊपर से पानी पिलाते थे, वैसे उन्हें भी पानी पिलाया। रमाकांत आर्तेजी का शादी होना ही मुश्किल हो गया। यह सब गांधीजी के कार्यकर्ता उच्चवर्णीय थे। फिर भी उन्हीं का समाज उनसे इस तरह का व्यवहार किया करता था। फिर दलितों को समाज में किस तरह अपमानित किया जाता होगा, इसका अनुमान आज हम गुजरात की घटना को देखकर कर सकते हैं।

घृणास्पद काम : मरे पशुओं की खाल निकालने का काम कितना गंदा और घृणास्पद है, यह मैं स्वानुभव से कह सकता हूं। मरे गाय-बैल लोग कहीं भी जंगल-पहाड़ों में, नदी-नालों के किनारे फेंक देते हैं। वहां जाकर धूप-बारिश में यह काम करना पड़ता है, दुर्गंध भी आती है, मक्खियां भिनभिनाती हैं। मरे गाय-बैलों के नाक-मुंह से कीड़े आते हैं। काम करते वक्त यह कीड़े हाथ पर चढ़ते हैं। खाल उतारने पर उसका वजन तीस-चालीस किलो रहता है, वह कंधे या सिर पर लादकर घर तक लाना पड़ता है। इस काम में कोई मदद रूप में नहीं होता।

ऐसा यह घृणास्पद काम हजारों वर्षों से हमने एक समाज को करने को मजबूर किया। इस बात का हमें भान तो है ही नहीं, बल्कि हमने उन्हीं दलितों को बेरहमी से पीटा और हम बड़े गर्व से खुद को 'गो-भक्त', 'गो-सेवक', 'गो-रक्षक' और 'देशभक्त' कहलवाते हैं।

डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर ने दलितों को, गौतम बुद्ध को अहिंसा का मार्ग दिखाया, सिर्फ इसी कारण गुजरात में मानवी हिंसा या दंगा-फसाद बड़े स्तर पर नहीं फैला। यह भी समझ लेना होगा।

नैसर्गिक सम्पत्ति के रक्षणकर्ता : चमड़ा निसर्ग निर्मित है और यह एक नैसर्गिक सम्पत्ति है। गुजरात के दलितों ने जाहिर किया है कि अब वे मरे गाय-बैलों की खाल नहीं उतारेंगे। इसका अर्थ यही है कि अब मरे गाय-बैलों की करोड़ों रुपये की खाल बेकार होने वाली है। चमड़े के लिए गाय-बैलों की कत्ल करनी पड़ेगी या चमड़ा बाहर से मंगवाना पड़ेगा, जिसका दुष्परिणाम चर्मोद्योग पर पड़ना स्वाभाविक है।

हजारों वर्षों से दलितों ने मरे गाय-बैलों की खाल उतारकर देश की नैसर्गिक सम्पत्ति का रक्षण किया और हमें चप्पल-जूते देकर हमारे पैरों का भी रक्षण किया, लेकिन हमने उन्हें क्या दिया, बस अपमानित जीवन और मार!

गुजरात के दलितों को कैसे पीटा गया, यह हम बड़े आराम से सोफा में बैठकर, वेफर्स खाते देख रहे हैं। हमारी नजर मर गयी है, हम संवेदनहीन बनते जा रहे हैं। प्रत्यक्ष अन्याय होते हुए दीख रहा है और फिल्म के दर्शक की तरह हम उसे देख रहे हैं। हम अंदर से अस्वस्थ नहीं होते, हम अन्याय के खिलाफ खड़े नहीं होते?

मूल मुद्दा जाति-व्यवस्था का : गुजरात की घटना से जाति-व्यवस्था का बड़ा घृणास्पद रूप उभरकर सामने आया है। मूल मुद्दा गो-रक्षण का नहीं, जाति-व्यवस्था का है। इसलिए जाति-व्यवस्था का स्वरूप हमें समझ लेना होगा। जाति-व्यवस्था का पालन सिर्फ सवर्ण करते हैं और दलित नहीं करते, ऐसी कोई बात नहीं है।

महाराष्ट्र में चर्मोद्योग में तीन जातियां काम करती हैं। पूर्वास्पृश्य महार समाज, मरे गाय-बैलों की खाल निकालता है। ढोर समाज चमड़ा पकाता है और चर्मकार समाज चप्पल-जूते बनाता है। चर्मकार समाज ढोर समाज को और ढोर समाज पूर्वास्पृश्य महार समाज को नीचा देखता है। ये तीनों समाज मातंग-मांग को अनदेखा नहीं करता।

परिणाम एक ही होता है, दलित

संगठित नहीं हो पाते हैं और उसका फायदा सवर्ण अन्याय करने के लिए लेता है।

गांधी-अम्बेडकर : राजनीति खेलने वालों ने अपनी दुकानदारी चलाने के लिए हर समय गांधी-अम्बेडकर को एक-दूसरे के विरोध में खड़ा किया। अम्बेडकरजी कहते थे कि देहात छोड़कर शहर में जाओ और गांधीजी कहते थे शहर छोड़कर देहात में आओ। या अम्बेडकरजी कहते थे कि मरे हुए गाय-बैलों की खाल उतारने का काम छोड़ दो और गांधीजी कहते थे कि वही काम करना होगा। ऐसी बातें करके गांधी-अम्बेडकर परस्पर विरोधी किस प्रकार थे, ऐसा एक चित्र समाज के सामने खड़ा किया गया।

आखिर ये दोनों बातें गांधी-अम्बेडकर किसको सामने रखकर कह रहे हैं? किस परिस्थिति में और किस काल में वे कह रहे हैं? यह न बताते हुए, संदर्भ तोड़कर इस तरह की भ्रामक बातें की जाती हैं।

गांधी-अम्बेडकर के समय देहात में दलित अल्पसंख्यक थे। उनपर अन्याय होते थे। उनके पास जमीन नहीं थी। पारम्परिक काम जबरदस्ती उनपर थोपे गये थे और उसी समय बम्बई जैसे शहर में रेलवे और कपड़ा-मील के कारण दलितों को पारम्परिक काम छोड़ने पर रोजगार का नया मौका मिलने वाला था। इसलिए अम्बेडकरजी दलितों को कह रहे थे कि देहात छोड़कर शहर में जाओ। उस समय देहातों की स्थिति क्या थी? देहातों में पढ़े-लिखे लोग नहीं थे। सनातन रुढ़ि परम्पराएं थीं। गांधीजी का कहना था, देहातों में नये आधुनिक विचार पहुंचाना जरूरी है और इसलिए वे शिक्षित और बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों को कह रहे थे कि आप शहर छोड़कर देहात में जायें।

वही बात, मरे गाय-बैलों की खाल उतारने की थी। इसी काम के कारण हमें अगर अछूत माना जाता है तो यह काम दलित न करें। दलितों को अम्बेडकर यह बात कहकर जाति-व्यवस्था पर प्रहार कर रहे थे। और, गांधीजी सवर्णों को यह काम करने को कहकर उनकी मानसिकता बदलकर जाति व्यवस्था तोड़ना चाहते थे। यह सब बातें हमें समझनी होंगी।

आज गांधीवादी और अम्बेडकरवादियों को एक होने की जरूरत है। यह काल की मांग है। लेकिन गांधीवादी निष्क्रिय हैं और अम्बेडकरवादी भाजपा और शिवसेना के साथ चल पड़े हैं।

जाति-निर्मूलन के प्रयास : गांधी, अम्बेडकर और विनोबाजी ने अस्पृश्यता-निवारण, जाति-निर्मूलन और जाति-अंत की दिशा में प्रयास किये। जन-जागृति और समाज-प्रबोधन किया। सवर्ण और दलितों की मानसिकता बदलने की कोशिश की।

अनेक व्यक्तियों ने अपने स्तर पर कुछ प्रयास किये हैं। दलित-सवर्ण का सहभोज कार्यक्रम किया है। आंतरजातीय विवाह किये हैं। कुछ लोगों ने उपनाम (सरनेम) से जाति समझने में न आये, इसलिए उपनाम (सरनेम) लिखना छोड़ दिया। कइयों ने जाति व्यवस्था तोड़ने के लिए दलितों के पारम्परिक काम करना शुरू किया। इन बातों से बहुत कुछ न सध पाया हो, लेकिन जाति व्यवस्था पर चोट जरूर लगा। सरकार को आरक्षण, दलित उत्पीड़न विरोधी कानून आदि लागू करने पड़े।

जाति व्यवस्था तोड़ने के लिए आज कोई नेता या समाज सामूहिक स्तर पर कोशिश कर रहा है, ऐसा नजर नहीं आता। व्यक्तिगत स्तर पर कोई कुछ कर रहा है, ऐसा भी दिखायी नहीं देता।

आज एक ही मांग उठायी जाती है, कठोर से कठोर कानून बनाओ, आरक्षण की व्याप्ति बढ़ाओ और दलित-अल्पसंख्यक को सत्ता में स्थान दो। यह मांगे जरूर करनी चाहिए। लेकिन सिर्फ न्याय-व्यवस्था और शासन-व्यवस्था के आधार से जाति व्यवस्था टूटेगी, यह एक खोखला आशावाद है। कानून खुद दुर्बल है; और कानून जिनके हाथों में है, वे उससे भी दुर्बल हैं। यह दुर्बलता का गुणाकार है।

हमारी मांगे : दलित और स्त्रियों पर अत्याचार होने पर हम फाँसी की मांग करते है। लेकिन फाँसी का फंदा कौन खींचेगा? जल्लाद! यानी फाँसी देने वाली एक जमात, जाति कायम रखनी होगी। वही बात आहार-स्वातंत्र्य की है। व्यक्ति क्या खाये और क्या न खाये, यह शासन तय न करे। यह बात बराबर ही है। लेकिन कसाई और मछली पकड़ने वाला मछुआरा समाज से बेटी व्यवहार न करते; आहार-स्वातंत्र्य की मांग करने से समता कैसी आयेगी? इसका उत्तर भी हमें देना होगा।

शमशान में क्रिया-कर्म करने वाले जो ब्राह्मण या अन्य लोग होते हैं या सफाई के क्षेत्र में जो समाज होता है; इन कामों में जो दलित समाज है, इनका विचार करेंगे या नहीं? धर्म-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था बरकरार रखकर इन दोनों कामों में जो जाति-व्यवस्था है, यह कैसे खत्म होगी? जाति-व्यवस्था तोड़नी है तो धर्म में कहे विचार एवं बातें, क्रिया-कर्म, रुढ़ियां छोड़नी पड़ेंगी। क्या इसके लिए हम तैयार हैं?

हाथ धो बैठे : गत सौ बरस में कुछ महापुरुषों ने संघर्ष करके कुछ विचार हमें प्रदान की। इसी कारण कुछ हद तक समाज में समता स्थापित हुई। महात्मा फुलेजी ने शिक्षा सबके लिए खुली की। डॉ. बाबासाहब अम्बेडकरजी ने चवदार तालाब का पानी पीकर, पानी सबको मुक्त किया। दांडी-यात्रा निकालकर महात्मा गांधी ने नैसर्गिक संसाधनों पर हमारा अधिकार हमें प्रदान किया। विनोबाजी ने तेरह वर्षों तक भूदान पदयात्रा कर भूमिहीनों को जमीन दिलायी।

आज क्या स्थिति है? जो सौ बरस के संघर्ष के बाद हमें प्राप्त हुआ, वह सब गत बीस-पचीस बरस में हम गँवा बैठे हैं। हाथ धो बैठे हैं।

शिक्षा महँगी करके समाज को शिक्षण से वंचित किया गया है। पानी को बिक्री की चीज बना दिया गया। अब पानी मुफ्त नहीं मिलता। मिट्टी, रेत, नमक पूंजीपतियों के हाथ में देकर नैसर्गिक संसाधन के हमारे अधिकार छीने जा रहे हैं। विकास के नाम से खुद शासन ही जमीन अधिग्रहित कर रही है, और पूंजीपतियों को दे रही है। किसान को भूमिहीन

तथा विस्थापित बना रही है। इस विकास की होड़ में सबसे पहले दलित मारा जा रहा है। जाति व्यवस्था ताकतवर बन रही है।

विचित्र अनुभव : कुछ वर्ष पहले मैं नागपुर गया था। जिनके घर ठहरा था, उनकी एक क्रिश्चियन सहेली आयी थी। वह उन्हें कह रही थी कि मेरी बेटी के लिए कोई ब्राह्मण-क्रिश्चियन बेटा ढूंढो। देखिये, अगर कल पूरा देश क्रिश्चिन या मुस्लिम भी बन जाये तो भी उसमें ब्राह्मण-क्रिश्चियन; ब्राह्मण-मुस्लिम की जाति-व्यवस्था रहेगी।

जाति व्यवस्था ऐसी है कि टूटते नहीं टूटती। जाति व्यवस्था तोड़ने की कोई 'मास्टर-की' किसी व्यक्ति या पक्ष के हाथ में है नहीं। हमें उस दिशा में विचार करना है, वैसे प्रयास करने हैं। इतना ही आज हमारे हाथों में है।

शक्ति या ताकत कम होना गुनाह नहीं है। लेकिन जो शक्ति है, उसका उपयोग न करना गुनाह है। आज हमारे पास जो भी शक्ति है उसका उपयोग हम नहीं करेंगे तो हम गुनाहगार माने जायेंगे। काल हमें माफ नहीं करेगा।

गुजरात के दलितों ने जाति व्यवस्था पर 'भीम-प्रहार' किया है इतना निश्चित!! ❑

सर्वोदय बुक स्टाल, व्यवस्थापक हेतु आवेदन आमंत्रित

1. दक्षिण पूर्व मध्य रेलवे, गोंदिया, 2. पूर्व मध्य रेलवे, मुजफ्फरपुर एवं 3. उत्तर मध्य रेलवे, शिकोहाबाद रेलवे स्टेशन हेतु नये व्यवस्थापक की आवश्यकता है।

इच्छुक व्यक्ति 30 सितंबर 2016 तक अपना आवेदन सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी में प्रस्तुत करें। स्थानीय भाषा-भाषी एवं गांधी-विचार में निष्ठा रखने वाले व्यक्ति को प्राथमिकता दी जायेगी। **–संयोजक,**

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-221001

दलित अत्याचार के विरोध में पदयात्रा एवं सत्याग्रह

उना (गुजरात) में दलितों पर हुए अत्याचार का प्रतिरोध करने एवं पीड़ितों के प्रति संवेदना व्यक्त करने के लिए सर्व सेवा संघ (अ.भा. सर्वोदय मंडल), सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, गुजरात लोकसमिति, पीयूसीएल, गुजरात, मुम्बई सर्वोदय मंडल एवं अन्य नागरिक संगठनों के कार्यकर्ता अगस्त क्रांति के दिन 9 अगस्त को उना पहुंचे। वहाँ खादी भंडार में कार्यकर्ताओं की बैठक हुई। 10 अगस्त को सभी लोगों ने 12 किमी की पदयात्रा करते हुए *मोटा समढियाला* गांव पहुंचे जहां पीड़ित परिवारों से मिलकर उनके प्रति एकजुटता प्रकट की और उनके घर पर ही सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री जयवंत मठकर के नेतृत्व में सर्वधर्म प्रार्थना हुई। इसमें पीड़ित परिवारों के लोग तथा अन्य स्थानीय नागरिक भी शामिल हुए। मठकर जी ने सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की ओर से कहा कि यदि पीड़ित परिवार चाहेंगे तो उन्हें सेवाग्राम आश्रम में रहने, खेती के लिए जमीन एवं बच्चों की शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था की जायेगी। आश्रम प्रतिष्ठान की ओर से 25 हजार, सर्व सेवा संघ की ओर से 11 हजार एवं गुजरात लोकसमिति की ओर से 14 हजार, इस प्रकार कुल 50 हजार रुपये पीड़ितों के सहायतार्थ दिया गया। इसके अतिरिक्त शामिल संगठनों द्वारा उनके रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था तथा इससे संबंधित प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की भी घोषणा की गयी।

सर्वोदय संगठनों के प्रतिनिधि मंडल ने सरकार से मांग की है कि जिन पुलिस कर्मियों की उपस्थिति में दलितों को पीटा गया और बेकसूर गिरफ्तार किया गया, उन्हें गिरफ्तार किया जाय और नौकरी से बर्खास्त किया जाय। गुजरात में अभी भी 53 हजार एकड़ भूदान की जमीन का वितरण बाकी है। इस जमीन को भूमिहीन दलितों के बीच वितरित की जाय।

प्रतिनिधि मंडल में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, महामंत्री शेख हुसेन, गुजरात लोकसमिति की मंत्री नीता महादेव, मुम्बई सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष जयंत दिवाण, महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष शंकरबगाड़े, विनोबा जन्मस्थान स्मारक, गागोदे के संचालक विजय दिवाण आदि शामिल रहे।

पीड़ित परिवारों ने सर्वोदय कार्यकर्ताओं की सद्भावना के लिए आभार प्रकट किया।

11 अगस्त को साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में उपवास सत्याग्रह हुआ। सामाजिक न्याय में विश्वास रखने वाले सभी कार्यकर्ता इस कार्यक्रम में शामिल हुए।

–भवानीशंकर कुसुम, राष्ट्रीय प्रवक्ता, सर्व सेवा संघ

बाबूराव चंदावार अब नहीं रहे

ज्येष्ठ सर्वोदयी बाबूराव चंदावार का 31 जुलाई, 2016 को पुणे (महाराष्ट्र) में निधन हो गया। वे 82 वर्ष के थे।

बाबूरावजी की सामाजिक जीवन की शुरुवात चरखा संघ से हुई। वे महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले के रहने वाले थे। विनोबा के साथ जुड़कर आपने भूदान, ग्रामदान का काम किया। जयप्रकाशजी के निकटतम साथियों में वे एक थे। सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन में आपने सक्रिय भूमिका अदा की और जेल भी गये।

बढ़ता नक्सलवाद उनकी चिन्ता का विषय था। इसी चिन्ता के तहत आपने चन्द्रपुर, गड़चिरोली जिले के नक्सलग्रस्त इलाके का वाहन-दौरा भी किया था।

सर्वोदय परिवार उनकी आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से विनम्र प्रार्थना करता है।

बाबूरावजी की स्मृतियों को वंदन! **–कार्य. संपादक**

कार्यक्रम

सम्पूर्ण क्रांति मित्र-मिलन समारोह सम्पन्न

सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी के परिसर में 30-31 जुलाई, 2016 को दो-दिवसीय 'सम्पूर्ण क्रांति मित्र-मिलन' का आयोजन हुआ। 'सर्व सेवा संघ' और 'सम्पूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच' द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित इस मित्र-मिलन में मुख्य रूप से 1974 दौर के सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी करने वाले साथियों सहित 12 प्रदेशों से 100 से ज्यादा प्रतिनिधि शामिल हुए।

सम्मेलन में मौजूदा राष्ट्रीय एवम् अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का जायजा लिया गया। पिछले दिनों देश के अलग-अलग इलाकों में दलितों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं के खिलाफ दमन और उत्पीड़न की शर्मनाक घटनाओं में जो बढ़ोत्तरी हुई है, उसकी तीखी भर्त्सना की गयी। इस संदर्भ में इस चुनौती को विशेष रूप से रेखांकित किया गया कि यद्यपि जातीय, साम्प्रदायिक व लैंगिक विभेद और विद्वेष की जड़ें हमारे देश में पहले से ही गहरी जमी हुई हैं; लेकिन खासकर पिछले दो वर्षों के दौर में अन्ध राष्ट्रवाद, गोरक्षा और छद्म देशभक्ति के नाम पर जातीय-साम्प्रदायिक विद्वेष को भड़काने की योजनाबद्ध कोशिशें की गयी हैं, जिन्हें मौजूदा केन्द्रीय व कई प्रान्तीय सत्ता-केन्द्रों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थन हासिल है—यह गहरी चिन्ता का विषय है। सांसदों, विधायकों, यहाँ तक कि सरकार के जिम्मेदार पदों पर बैठे कुछ मंत्रियों द्वारा भी बेलगाम, गैरजिम्मेदार बयानबाजी और उनपर सरकारों की चुप्पी या बहानेबाजी के साथ बचाव ने इस परिस्थिति को बेहद चिन्ताजनक बना दिया है। देश की एकता को तोड़ने वाली ऐसी तमाम गतिविधियों और उन्हें संरक्षण देने वाले तत्वों के खिलाफ सक्रिय शान्तिमय प्रतिरोध संगठित करने का फैसला किया गया।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए वयोवृद्ध (92-वर्षीय) गांधीवादी डॉ. रामजी सिंह ने समाज को विभाजित और कमजोर करने वाली ताकतों को निष्प्रभावी बनाने और देश की एकता को मजबूत बनाने वाली ताकतों को एकजुट करने का आह्वान करते हुए कहा कि भारत की सामासिकता (गंगा-जमुनी संस्कृति) को बचाने और मजबूत बनाने का प्रभावी अभियान चलाने की जरूरत है। गांधी-विनोबा-जयप्रकाश नारायण के विचारों को अपनाने वाली जमात को इसमें खुद को खपाने की जरूरत है।

समसामयिक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए वरिष्ठ पत्रकार रामदत्त त्रिपाठी (बी.बी. सी. के पूर्व प्रतिनिधि) ने ध्यान दिलाया कि गरीब देशों के प्राकृतिक संसाधनों की लूट में दुनियाभर के कॉरपोरेट समूह शामिल हैं, जिन्हें मजबूत देशों की सरकारों का समर्थन हासिल है। धार्मिक-साम्प्रदायिक उन्माद के नाम पर भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में नफरत और हिंसा को बढ़ाने की मुहिम जारी है। इसका माकूल जवाब गांधी-विचार और गांधी के रास्ते से दिया जा सकता है, दिया जाना चाहिए।

'सर्वोदय जगत' के सम्पादक और 'गोविन्द वल्लभ पंत सामाजिक शिक्षण-संस्थान' इलाहाबाद के पूर्व प्रोफेसर बिमल कुमार ने अर्थव्यवस्था और पूँजीवाद के बदलते स्वरूपों की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा कि मौजूदा दौर में पूँजी, बाजार, सूचना और ज्ञान राज्य के नियंत्रण से बाहर निकल चुके हैं। दुनियाभर में कॉरपोरेट घराने और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इनको नियंत्रित और संचालित कर रही हैं; इसीलिए सरकारें बदल जाने भर से अर्थव्यवस्था की रीति-नीति में कोई बदलाव नहीं होता—वह जनविरोधी से और ज्यादा जनविरोधी होती जाती है।

रामशरण, घनश्याम, रामधीरज आदि ने अपने वक्तव्यों में आगाह किया कि ग्राम पंचायतों को जो थोड़े-बहुत अधिकार पंचायतीराज कानून के जरिये मिले थे, उन्हें भी कुन्द करने और निष्प्रभावी बना देने की सरकारी तैयारियाँ जारी हैं।

अशोक मोती ने अपने वक्तव्य में सम्पूर्ण क्रांति के लिए युवा शक्ति को जोड़ने तथा लोकसमिति और ग्रामसभाओं को सुदृढ़ करने की आवश्यकता बतलायी।

अन्य तमाम वक्ताओं ने अपनी यह चिन्ता साझा की कि देश में अति केन्द्रीकरण के जरिये लोकतांत्रिक माहौल को खत्म करने की प्रक्रिया जारी है। लोकतंत्र के विकास के लिए जरूरी असहमतियों की आवाजों पर संजीदगी से ध्यान देने के बजाय उन पर देशद्रोह का ठप्पा लगाकर उनका गला घोंटने की सुनियोजित कोशिशें सत्ता के संरक्षण में चल रही हैं। यह बात भी उभरकर आयी कि जनता के विरोध जताने के लोकतांत्रिक अधिकारों की उपेक्षा करने वाले ऐसे तमाम राजनैतिक दल व समूह खुद को 1974 के सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन का भागीदार बताते हैं, जबकि असलियत यह है कि उस आन्दोलन का इस्तेमाल उन्होंने सत्ता पाने की सीढ़ी के रूप में किया है। एक ओर अल्पसंख्यक और दलित विरोधी उन्मादी हिन्दुत्व को संरक्षण देने की राजनीति करने वाले, और दूसरी ओर खुद को सामाजिक न्याय का हिमायती बताने वाले राजनैतिक दलों व समूहों का सम्पूर्ण क्रांति के मूल्यों से कोई सम्बन्ध न तब था, न आज है।

जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया और डॉ. अम्बेडकर के नामों का इस्तेमाल वे अपने-अपने निहित स्वार्थ साधने में ही करते हैं। आम राय थी कि इनकी असलियत को जनता के सामने बेनकाब करने की जरूरत है।

'चौथी दुनिया' के सम्पादक सन्तोष भारतीय और रामदत्त त्रिपाठी ने मीडिया और खासकर सोशल मीडिया के महत्व को रेखांकित करते हुए जनता के हकों की लड़ाई के अभियान में इन माध्यमों के सार्थक और सुनियोजित उपयोग पर बल दिया।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने अपने समापन वक्तव्य में देश के विभिन्न इलाकों से जुटे 1974 के सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के साथियों सहित मौजूद प्रतिनिधियों का आह्वान किया कि मौजूदा दौर 1974 के दौर से ज्यादा चुनौतीपूर्ण है, जब विकास के नाम पर गरीबों-वंचितों के हक-हुकूक छीनने और उन्हें हाशिये पर पहुँचाने का काम ज्यादा चालाकी और होशियारी के साथ किया जा रहा है, इसलिए उसी जज्बे और समर्पण के साथ शांतिमय जनसंघर्ष के एक नये दौर को शुरू करने की जरूरत है।

देश में दलितों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं पर बढ़ते हमलों और उत्पीड़न के संगठित व शान्तिमय प्रतिकार का फैसला किया गया। देश की भावनात्मक एकता और गंगा-जमुनी संस्कृति को मजबूत बनाने का संकल्प लिया गया। इन संदर्भों में आगामी महीनों में आयोजित किये जाने वाले कार्यक्रमों की जानकारी क्रमशः नीता और सर्व सेवा संघ के मंत्री चंदन पाल ने दी। हाल ही में गुजरात के उना में दलितों के उत्पीड़न की घटना के अलावा देश के अन्य इलाकों में भी दलित उत्पीड़न की तमाम घटनाओं के प्रतिवाद में सामाजिक समता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से आगामी 11 अगस्त 2016 को गुजरात के साबरमती आश्रम से एक यात्रा शुरू की जायेगी, जिसका समापन 15 अगस्त को उना के निकट स्थित उस गाँव—मोटा समधियाला में होगा, जहां उक्त शर्मनाक घटना घटी थी।

देश की भावात्मक एकता को मजबूत करने के लिए सर्व सेवा संघ के तत्वावधान में आगामी 3 सितम्बर से 3 नवम्बर, 2016 के दौरान 60-दिवसीय साइकिल यात्रा 'मोहब्बत का पैगाम' के नाम और संदेश के साथ असॉम के कोकराझार से जम्मू-कश्मीर के श्रीनगर तक आयोजित की जायेगी, जो कुल 8 प्रदेशों—असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और जम्मू-कश्मीर—से होकर गुजरेगी; और मोहब्बत, सद्भाव और एकता का पैगाम लेकर जायेगी। इस यात्रा में बोड़ो, राभा, राजवंशी, मुस्लिम, असमिया, मणिपुरी, त्रिपुरी और बिहारी युवक-युवतियाँ मुख्य रूप से शामिल रहेंगे।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति के जरिये जिस आमूल परिवर्तन का आह्वान किया था, उस वैचारिक धारा को ज्यादा मजबूत और व्यापक बनाने के लिए 'सम्पूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच' का संगठन देशभर में बनाने का निश्चय किया गया। इसके साथ सहमना समूहों और संगठनों को भी जोड़ने का निर्णय हुआ। इसके लिए एक राष्ट्रीय संचालन समिति का गठन किया गया, जिसका संयोजक भवानीशंकर कुसुम (जिन्होंने सम्मेलन की कार्रवाई का संचालन किया) को बनाया गया।

सम्मेलन में मौजूद 1974 के आन्दोलनकर्ता भले ही उम्रदराज हो गये हों, लेकिन उनके उत्साह और जोशोखरोश में कोई कमी नहीं थी। सम्मेलन में 12 प्रदेशों के 100 से ज्यादा प्रतिनिधियों सहित सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, महामंत्री शेख हुसैन, मंत्री चंदन पाल, प्रबंधक ट्रस्टी टी. आर. एन. प्रभु, डॉ. रामजी सिंह, तपेश्वर भाई, भवानीशंकर कुसम, रामशरण, घनश्याम, रामधीरज, राजेन्द्र कुम्भज, आशा बोथरा, अंजलि, कनक, मणिमाला, रामदत्त त्रिपाठी, सन्तोष भारतीय, श्रीनिवास, ज्ञानेन्द्र कुमार, अशोक मोती, शिवविजय, अरविन्द अंजुम आदि शामिल थे।

सम्मेलन के समापन के बाद सर्व सेवा संघ के परिसर में स्थित 'गांधी विद्या संस्थान' को नाजायज कब्जे से मुक्त कराने और इसके पुनर्संचालन की माँग करते हुए तमाम प्रतिनिधियों ने प्रदर्शन किया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने 1962 में गांधी विचार पर अध्ययन और शोध के उद्देश्य से गांधी विद्या संस्थान की स्थापना सर्व सेवा संघ के परिसर में की थी। संस्थान की कार्यवाहक कुलसचिव मुनीजा रफीक खान ने बताया कि गांधी ओर जयप्रकाश के विचारों के विरोधी गोडसे समर्थक निहित स्वार्थी समूहों द्वारा संस्थान पर कब्जा करने की साजिश की गयी, नतीजतन मामला अदालत में पहुँच गया और संस्थान का मूल काम ठप हो गया। ये अवैध कब्जेदार संस्थान के मुख्य भवन में संस्कृत पाठशाला चला रहे हैं; और भवन के कमरों को नाजायज तौर पर किराये पर उठा रखा है और किराये की नाजायज वसूली कर रहे हैं।

जेपी के सहयोगी 92-वर्षीय डॉ. रामजी सिंह, जो इस संस्थान के कुछ समय तक निदेशक भी रह चुके हैं, के नेतृत्व में संस्थान के बंद पुस्तकालय के निकट स्थित जयप्रकाशजी की प्रतिमा के निकट प्रदर्शनकारियों ने 'गांधी विद्या संस्थान को अवैध कब्जेदारों से मुक्त करो', 'कर्मचारियों का उत्पीड़न बंद करो' और 'जयप्रकाश अमर रहें' के जोशीले नारों के साथ प्रदर्शन किया। डॉ. रामजी सिंह ने संस्थान की शुरुआत और उसके उद्देश्यों की संक्षिप्त जानकारी दी। गांधी विद्या संस्थान को अवैध कब्जे से मुक्त कराकर उसके मूल उद्देश्यों—गांधी विचार का अध्ययन व शोध कार्य—की पुनर्बहाली का संकल्प लिया गया।

–अशोक, उन्नाव

कविता

कन्यादान

आज राखी पर तुम्हें याद करते हुए

❑ शैलजा पाठक

तुमने सारे रिवाज निभा दिये
और कर दिया मुझे अपनी जिन्दगी
से दूर और दूर...
तुम्हें याद है न भाई

जब मंडप को घर के बड़ों ने छवाया
और मेरे जीवन में एक पुख्ता
छत की नींव डाली
तुम वहीं मेरे पास बैठे देख रहे थे

जब अम्मा ने अपने भाई से ली थी
इमली घोटाई की साड़ी
और जीवन में साथ का भरोसा
तुम सामने से देख रहे थे
या खोये थे कहीं और?

कन्यादान की रस्म में जब औरतें
गा रही थीं वो गीत
अरे-अरे भैया हमार भैया हो धरिया
जनी तोड़ीह हो
तुम जानते थे भाई कलश का पानी
खतम होते ही मैं किसी और की हो जाऊँगी...

और आखिर में तुमने निभा दी
एक आखरी रस्म
जब विदा के वक्त तुमने अपनी
अंजलि से पिलाया था
मुझे पानी जिसमें मिले थे
मेरे तुम्हारे आंसू
मुझे रीतियों ने बताया
वो था मेरे दुलार पाने का
आखिरी दिन

तुम तो समृद्ध थे ना
पर कितने लाचार लगे
पीछे मुड़के देखा था मैंने
कैसे ढेर पड़े पिताजी को
पकड़ कर रो रहे थे तुम

मैं ओझल हूँ
पर मुझे पता है
मेरे बाद अम्मा ने बटोरा होगा
ने आँचल में घर भराई का चावल
और तुम मेरी मेज पर
सजा रहे होगे
मेरी ही किताब
फ्रेम में लगी मेरी फोटो मुस्कुरा रही होगी
और तुम भाई???

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार / कार्यकारी संपादक : अशोक मोती।